# शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

*शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका*

वर्ष : 17 अंक : 4 1 नवम्बर 2024

कार्तिक, विक्रम संवत् 2081



परामर्श

**डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल**

**जगदीश प्रसाद सिंघल**

**शिवानन्द सिन्दनकेरा**

**जी. लक्ष्मण**

**महेन्द्र कुमार**

❖

सम्पादक

**प्रो. शिवशरण कौशिक**

❖

संपादक मंडल

**प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय**

**प्रो. राजेश कुमार जांगिड़**

**प्रो. ओमप्रकाश पारीक**

**डॉ. एस.पी. सिंह**

**भरत शर्मा**

❖

प्रबन्ध सम्पादक

**महेन्द्र कपूर**

❖

व्यवस्थापक : **बसंत जिंदल**

कार्यालय प्रमुख : **आलोक चतुर्वेदी**

मो. 9828337560

❖

प्रेषण प्रभारी : **नौरंग सहाय 'भारतीय'**



प्रकाशकीय कार्यालय

82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,

जयपुर (राजस्थान) 302001

दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :

शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,

कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली - 110053

E-mail :

shaikshikmanthan@gmail.com

Visit us at :

www.shaikshikmanthan.com

**वार्षिक शुल्क ₹ 300/-**

**दस वर्षीय शुल्क ₹ 2000/-**

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर



*शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।*


## संविधान का आत्मदर्शन

❑ डॉ. बालूदान बारहठ

भारत के संविधान ने कितने विशाल लोकतांत्रिक मैकेनिज्म को स्थापित किया है, उसकी एक झलक देखिए। पहले आम चुनाव में देश में कुल 17 करोड़ से अधिक मतदाता थे जिन्होंने 53 राजनीतिक दलों के 1874 उम्मीदवारों को मत दिया जिनमें से 489 सांसद निर्वाचित हुए थे। जब 2024 में आम चुनाव हुए तब देश में मतदाताओं की संख्या करीब 80 करोड़ थी। इन्होंने 460 से अधिक राजनीतिक दलों के 8250 उम्मीदवारों को मत दिया जिनमें से 545 सांसद के रूप में चुने गये।

4

# अनुक्रम


| | | | |
|---|---|---|---|
| 3. | संपादकीय | – | प्रो. शिवशरण कौशिक |
| 6. | भारतीय संविधान का आदर्श : प्रस्तावना | – | डॉ. अनुपम चतुर्वेदी |
| 8. | प्राचीन भारत में गणतंन्त्रात्मक संवैधानिक व्यवस्था... | – | डॉ. मोहनलाल साहु |
| 11. | संविधान भारत की आत्मा | – | डॉ. कुलदीप सिंह |
| 13. | लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना और ... | – | बिजय कुमार बेहरा |
| 16. | संविधान निर्माण के भारतीय स्रोत | – | डॉ. अरुणा शर्मा |
| 18. | भारतीय संविधान में भारतीय भाषा का महत्त्व | – | स्मिता रावसाहेब देशमुख |
| 21. | संविधान संशोधनों का इतिहास | – | डॉ. धीरज शर्मा |
| 26. | संविधान में जीवन-दर्शन के लोकतांत्रिक मूल्य | – | डॉ. जसपाल सिंह वरवाल |
| 28. | भारतीय संविधान में मानवाधिकारों की आध्यात्मिक... | – | प्रो. प्रकाश चंद्र अग्रवाल |
| 30. | भारतीय संविधान में सांस्कृतिक मूल्य | – | डॉ. दीपक कुमार अवस्थी |
| 32. | अद्‌भुत संतुलन का उदाहरण है संविधान | – | डॉ. अंजनी कुमार झा |
| 34. | संविधान में शिक्षा और शिक्षक | – | डॉ. अलोक कुमार गौरव |
| 37. | संविधान सभा में भारतीय चिंतन और संस्कृति... | – | डॉ. शिवपूजन प्रसाद पाठक |
| 43. | Bharatiya Sanskriti and the Constitution | – | Dr. TS Girish Kumar |
| 45. | Need for Secular Uniform Civil Code ... | – | Dr. Raj Kumar |
| 48. | The Preamble of the Indian Constitution... | – | Rahul Mishra |
| 50. | National Emergency : A Gloomy Phase... | – | Dr. Arjun Gope |


## Rural Governance in Fifth Scheduled Areas : A Constitutional Guarantee of Social Justice and Equality

❑ **Dr. Anil Kumar Biswas**

This act gives an important safeguard to the tribal people for the protection of their land from the mafia. In the issue of money lending in scheduled areas, the states of Andhra Pradesh, Gujrat, and Orissa empower the Gram Panchayats; Jharkhand provides the power to District Panchayat and the states of Chhattisgarh, Madhya Pradesh, and Maharashtra empower the Gram Sabha to decide to give license to a money lender in the scheduled area. In this way, PESA made various layers of protection for tribal people living in fifth scheduled areas across the country for the aims of social justice and equality.

40



ISSN 2581-4133

# संपादकीय

**प्रो. शिवशरण कौशिक**
*संपादक*

संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष और स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री बाबासाहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर के 125 वें जन्म जयंती वर्ष 2015 के उपलक्ष में भारत सरकार द्वारा पूर्व में आयोजित होने वाले 'राष्ट्रीय कानून दिवस' को भारत के 'संविधान दिवस' के रूप में मनाने हेतु अधिसूचित किया गया और यह निर्णय लिया गया कि देशभर में 26 नवंबर को प्रतिवर्ष संविधान दिवस का बृहद् स्तर पर आयोजन किया जाएगा। डॉ. अंबेडकर ने 26 नवंबर सन् 1949 को संविधान को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति बाबू राजेंद्र प्रसाद को हस्तगत करते हुए देश को समर्पित किया। तदुपरान्त भारत एक संविधानसम्मत लोकतांत्रिक गणराज्य बन गया।

वस्तुत: संविधान हमारे राष्ट्रीय जीवन में बहुत महत्त्व रखता है क्योंकि यह भारत के प्रत्येक नागरिक को दूसरे नागरिक के साथ रहना, जीना, सहयोग करना सिखाता है। भारत के अलग-अलग प्रांतों, अलग-अलग सामाजिक संरचनाओं तथा उनकी अलग-अलग जीवन शैलियों को समन्वित कर परस्पर एक साथ रहने की वैधानिक स्थितियों का निर्माण संविधान ही करता है। हमारे जिन नेताओं ने मिलकर संविधान निर्माण किया वे सब स्वतंत्रता संग्राम में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका के साथ आंदोलन को नेतृत्व प्रदान कर चुके थे। इसलिए वे सभी ऐसे भारत की कल्पना करते थे जो पुन: सजीव, सगुण तथा साकार रूप में सशक्त हो उठे! यही सोचकर वे संविधान निर्माण के लिए उद्यत हुए थे। जो संविधान राष्ट्र को जनतांत्रिक सत्ता प्रदान करता है उसका महत्त्व सर्वमान्य है।

भारतीय संविधान में भारत को राज्यों के संघ के रूप में परिभाषित करते हुए इसे बहु-संस्कृति मिश्रित सहिष्णु लोगों का समाज बताया है। इससे भारत की सहस्त्रों वर्ष की सह अस्तित्व की भावना का ही उद्भास होता है जिसके आधार पर प्रत्येक नागरिक की स्वतंत्रता, परस्पर समानता तथा अधिकार संपन्नता स्थापित की गई है। क्षेत्रीय उप-संस्कृतियाँ भी इसमें निर्बाध रूप से प्रगति करती रही हैं। 'विविधता में एकता' भारत और भारतीय संविधान की मूल उद्भावना है। उपनिषदों के आदर्श वाक्य 'वसुधैव कुटुंबकम्' को भारतीय संविधान में प्रमुखता दी गई है। विश्व के प्रति कौटुंबिक भ्रातृभाव का प्रसार भारत के सनातन विचार से ही नि:सृत है जो प्राणिमात्र के प्रति सद्भाव और कल्याण की भावना को जगाता है।

संविधान के विभिन्न खंडों (भागों) के प्रथम पृष्ठ पर बने पौराणिक-ऐतिहासिक चित्रों के साथ सुभाषित तथा सूक्तियाँ मुद्रित हैं। इनमें अधिकांश की भाषा संस्कृत है जो कि सभी भारतीय भाषाओं की जननिभाषा है। डॉ भीमराव अंबेडकर स्वयं संस्कृत के न केवल प्रबल समर्थक थे, अपितु वे यह भी चाहते थे कि भारत की राजभाषा संस्कृत हो; क्योंकि संस्कृत शब्दावली का अनुप्रयोग उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक बोली जाने वाली अधिकांश भारतीय भाषाओं में स्वाभाविक रूप से किया जाता है। यदि उनकी यह राय तब स्वीकार कर ली जाती तो संभवतया भारत में भाषा की समस्या इतनी विकट नहीं होती। आज भी आठवीं अनुसूची में स्वीकृत 22 भारतीय भाषाओं में अधिकांश की शब्दावली में संस्कृत शब्दों की प्रचुरता है।

संविधान के आरंभिक पृष्ठ पर भारत का राष्ट्रीय प्रतीक अशोक स्तंभ चित्रित है जिस पर 'सत्यमेव जयते' लिखा है। सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, त्याग आदि भारतीय संस्कृति के ऐसे आधारभूत तत्त्व हैं जिनसे हमारा समाज निर्मित हुआ है। प्रमुख भागों पर वैदिक काल के गुरुकुल, भगवान श्रीराम, माता सीता और लक्ष्मण जी के वन से अयोध्या लौटने, कुरुक्षेत्र में महाभारत के युद्ध में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता का उपदेश देने, गौतम बुद्ध द्वारा निर्वाण प्राप्ति पश्चात् पहला उपदेश (धर्म-चक्र प्रवर्तन) देते हुए, 24वें जैन तीर्थंकर भगवान महावीर की ध्यान मुद्रा, सम्राट अशोक द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार, हनुमान जी द्वारा सीता माता की खोज में वायु मार्ग से लंका की ओर जाने, न्याय प्रिय राजा विक्रमादित्य के सिंहासन पर बैठकर न्याय करने, प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय के विशालकाय शिक्षा केंद्रों के, उड़िया शैली के सांस्कृतिक दृश्यों के, नटराज के, महाबलीपुरम के, शेषनाग व अन्य देवी देवताओं के, गंगावतरण तथा भगीरथ की तपस्या के, वीरमाता रानी लक्ष्मीबाई, महात्मा गांधी, नेताजी सुभाष चंद्र बोस आदि महापुरुषों के साथ हिमालय पर्वत आदि के भौगोलिक दृश्यों के चित्र मुद्रित किए गए हैं। ये सभी चित्र किसी न किसी रूप में भारत के गौरवशाली इतिहास और परंपरा के साथ भारतीय ज्ञान परंपरा की ही कथा कहते हैं। संविधान दिवस के अवसर पर विभिन्न शिक्षण संस्थानों तथा सामाजिक संगठनों द्वारा आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों में इन सभी चित्रों में अंतर्निहित संदेश और अंतर्भाव को विद्यार्थियों तथा नागरिकों के मध्य विचार का विषय बनाया जाना चाहिए तभी संविधान दिवस के आयोजन की सार्थकता है।

संविधान में प्रत्येक भारतीय नागरिक के प्रति सम्मान और अधिकार-रक्षा के भाव के साथ उसके कर्तव्यों का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है। आज नागरिकों में अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीनता का भाव आता जा रहा है जो वर्तमान में राजनीतिक, आर्थिक रूप से समृद्ध होते भारत के समक्ष अनेक प्रश्न खड़े करता है। 'हम भारत के लोग' जितने अधिकारों के प्रति सजग हुए हैं, उतने कर्तव्यों के प्रति सचेष्ट नहीं रहे। राष्ट्र-रक्षा, आर्थिक दुराचरण और नागरिकों में परस्पर सद्भाव की निरंतर होती जा रही कमी एक बड़ी चुनौती बनती जा रही है।

पंच-दिवसीय ज्योतिपर्व दीपावली की सभी को सादर हार्दिक शुभकामनाएँ! ❑

भारत के संविधान ने कितने विशाल लोकतांत्रिक मैकेनिज्म को स्थापित किया है, उसकी एक झलक देखिए। पहले आम चुनाव में देश में कुल 17 करोड़ से अधिक मतदाता थे जिन्होंने 53 राजनीतिक दलों के 1874 उम्मीदवारों को मत दिया जिनमें से 489 सांसद निर्वाचित हुए थे। जब 2024 में आम चुनाव हुए तब देश में मतदाताओं की संख्या करीब 80 करोड़ थी। इन्होंने 460 से अधिक राजनीतिक दलों के 8250 उम्मीदवारों को मत दिया जिनमें से 545 सांसद के रूप में चुने गये।

# संविधान का आत्मदर्शन

**डॉ. बालूदान बारहठ**
सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर

संविधान शासन व्यवस्था के निर्धारण का एक तकनीकी दस्तावेज मात्र नहीं होता, और न ही यह केवल संविधान निर्माताओं की भावनाओं की अभिव्यक्ति मात्र होता है। सही अर्थों में संविधान किसी देश के इतिहास, आदर्शों, मूल्यों, संस्कृति व स्वाधीनता संघर्ष की प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति होता है जिसे संविधान सभा मूर्त रूप देने का कार्य करती है। एक ऐसे राष्ट्र में जहाँ 800 वर्षों की पराधीनता रही हो, जिसका दुनिया के सबसे भीषणतम तरीके से आर्थिक शोषण हुआ हो, जिसका दुनिया के सबसे भीषणतम तरीके से आर्थिक शोषण हुआ हो, हजारों लाखों लोगों का जहां केवल अपनी आस्था के कारण संहार हुआ हो और औपनिवेशिक सत्ता ने जिसे स्वशासन के योग्य ही नहीं समझा हो, ऐसे देश में एक विस्तृत संविधान का निर्माण एवं लोकतंत्र की स्थापना केवल संविधान निर्माताओं का कार्य न होकर इस बात का प्रतीक है कि भारतीय मनीषा ने कभी भी पराजय को स्वीकार नहीं किया था। अत: संविधान की विशिष्टताओं को उस अजेय भारतीय मनीषा का वैधानिक दस्तावेज ही समझा जाना चाहिए।

धर्म के आधार पर देश के विभाजन की पृष्ठभूमि, विशाल भू भाग, विविधतायुक्त बड़ी आबादी, औपनिवेशिक शोषण से उपजी गरीबी, अशिक्षा व सामाजिक असमानता के साथ भारतीय संविधान ने अपनी यात्रा को आरंभ किया था। ऐसी चुनौतियों के साथ भारत में लोकतंत्र एवं संविधान सफल हो जाये, यूरो-अमेरिकी दर्शन इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं था। भारत के साथ स्वाधीन हुए एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के देशों में बहुधा लोकतंत्र एवं संविधान हिंसा व हत्याओं का शिकार हो रहे थे तथा वे देश तेजी से अधिनायकवाद का शिकार होकर छद्म रूप से पुन: उपनिदेशवाद का शिकार हो रहे थे। ऐसी स्थिति में भारत में लोकतंत्र और संविधान का प्रत्येक वर्ष भारत विरोधी विचार केन्द्र के लिए एक चुनौती था। इसलिए प्रत्येक आम चुनाव से पूर्व किसी राजनीतिक व सैनिक चुनौती (चीन व पाकिस्तान के साथ युद्ध) के समय, भाषायी आंदोलन के समय पूर्वोत्तर भारत के कुछ हिसंक संघर्षों के समय और यहाँ तक कि बाढ़ या सूखे की स्थिति में भी एक संप्रभु राज्य के रूप में भारत के अस्तित्व पर प्रश्न खड़े किए गए। अधंकार के वाचाल भविष्यवक्ताओं ने लंबे लेख लिखे कि भारत न अखण्ड रहेगा, न लोकतंत्र बचेगा और न ही संविधान चलेगा। अमेरिकी विद्वान सेलिंग हेरिसन ने विश्व के प्रत्येक उपलब्ध मंच पर भविष्यवाणी की कि ''बाधाएँ करीब करीब पूरी तरह आजादी के जीवित रहने के खिलाफ हैं और मुद्दा यह है कि वस्तुत: क्या कोई भारतीय राजसत्ता जीवित रह पाएगी?'' 1967 में टाइम्स के संवाददात्ता नेविल मैक्सवेल ने 'इंडियाज डिसिटिग्रेटिंग डेमोक्रेसी' नामक लेखमाला में घोषित

 ISSN 2581-4133

किया कि 'एक लोकतांत्रिक ढ़ाँचे के अंदर भारत को विकसित करने का महान प्रयोग असफल हो गया है और चौथे आम चुनाव निश्चित रूप से भारत में होने वाले अंतिम चुनाव होंगे।' इन विदेशी शक्तियों के अतिरिक्त अनेक बार गलत सिद्ध हो चुके देश के वामपंथी संदेहवादी भी मौजूद थे जो यह मानते थे कि कोई भी सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक विकास बिना हिंसक क्रांति के संभव ही नहीं। 1975 में लगाए गए आपातकाल ने इन सभी भविष्यवक्ताओं को सत्य साबित कर ही दिया था लेकिन भारतीय समाज की अर्न्तभूत शक्ति व इसकी लोकतांत्रिक जड़ों ने पुनः भारतीय संविधान व लोकतंत्र को सशक्त करने का कार्य किया।

भारत के संविधान को केवल शासन व्यवस्था अथवा राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना ही नहीं करनी थी अपितु इसे सबसे गहरे अर्थ में तो सामाजिक लोकतंत्र को स्थापित करना था। उज्ज्वल व उदार दार्शनिक परम्परा के उपरांत कतिपय ऐतिहासिक कारणों से भारत आज अनेक स्तर पर श्रेणीबद्ध हो गया था तथा उसमें अस्पृश्यता जैसी बुराइयाँ घर कर गई थी। संविधान ने इन्हें भी संबोधित कर समरस समाज की स्थापना में अपनी भूमिका का निर्वहन किया।

**अनुच्छेद 14 जहाँ विधिक समानता की स्थापना करता है वहीं अनुच्छेद 15**

समाज जीवन में सामाजिक आधारों पर किए जा रहे भेदभावों चाहे वह जाति या वंश, वर्ण, लिंग या जन्म स्थान आधारित हो, का उन्मूलन करता है। नियोक्ता के रूप में राज्य बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिकों को अवसर की समानता प्रदान करे, यह भी संविधान सुनिश्चित करता है। लेकिन केवल बाधाओं की अनुपस्थिति मात्र से ही सभी नागरिकों को समान अवसर प्राप्त नहीं हो सकते इसलिए संविधान राज्य को सकारात्मक कार्यवाही का अधिकार भी प्रदान करता है। अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े वर्ग व महिलाओं के लिए पदों के आरक्षण सहित अन्य प्रावधान कर संविधान सामाजिक न्याय की स्थापना सुनिश्चित करता है। तत्कालीन सामज में व्याप्त छुआछुत को दण्डनीय अपराध घोषित करना संविधान का ऐतिहासिक कार्य था, जिसका सुखद परिणाम आज हम समरस समाज के रूप में देख रहे हैं। इसी भांति समाज के सभी वर्गों को अनेक प्रकार की स्वंतत्रताएँ प्रदान कर उन्हें अपने व्यक्तित्व के विकास के अवसर देने का कार्य भी संविधान ने किया है। साथ ही यह सारी स्वतंत्रताएँ एक जिम्मेदारी है न कि मनचाहा आचरण, इसलिए इन सभी पर युक्तियुक्त प्रतिबंधों का भी उपबंध किया गया है।

राजनीतिक लोकतंत्र का अर्थ केवल नागरिकों को मताधिकार देना ही नहीं है, भारतीय संविधान ने इसकी व्यापकता को स्वीकार किया है। संविधान निर्माण के समय भारत की साक्षरता दस प्रतिशत के करीब ही थी। इतनी कम साक्षरता के होते हुए भी संविधान ने सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार को स्वीकार किया जो उस समय एक राजनीतिक क्रांति ही थी। यही नहीं संविधान ने न केवल 'एक व्यक्ति एक मत' को स्वीकार किया अपितु सभी नागरिकों को निर्वाचित होने का अधिकार प्रदान कर राजनीतिक न्याय की स्थापना को भी सुनिश्चित किया।

लेकिन लोकतंत्र कोई जड़ वस्तु नहीं हो सकता। यह केवल मत देने या निर्वाचित होने की गारण्टी ही नहीं है। एक व्यक्ति एक मत को स्वीकार करना अथवा स्वतंत्र नियामक निकाय का होना मात्र भी लोकतंत्र नहीं है। एक से अधिक राजनीतिक दलों व विविध विचारधाराओं की उपस्थिति भी लोकतंत्र का पर्याय नहीं है। लोकतंत्र एक जीवंत गतिविधि है जो समाज में निरंतर चलती रहती है, लोकतंत्र एक जीवन जीने की पद्धति है। समाज की एक गतिविधि एवं शासन के एक प्रकार के रूप में लोकतंत्र को स्थापित कर भारतीय समाज व संविधान ने इसे 'मदर ऑफ डेमोक्रेसी' के रूप में पहचान प्रदान की है। इसका निहितार्थ यह है कि भारत का ज्ञात इतिहास सदा लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित रहा है। यहां का ज्ञान मानव कल्याण में यहां की ऊर्जा सृष्टि पालन में, यहाँ का दर्शन सर्वहित में, शासन लोकहित में, भक्ति विश्व कल्याण तथा यहाँ की शक्ति निर्बल के संरक्षण में लगी है। यहाँ का शासक पालक के रूप में तथा प्रजा कर्तव्य केन्द्रित रही है। यहाँ की प्रार्थना में सभी के सुख व हित का बोध रहा है, यहाँ का अध्यात्म विज्ञान का पूरक रहा है। ऐसी दार्शनिक परम्परा को मौलिक अधिकारों, राज्यनीति के निदेशक तत्त्वों तथा नागरिक कर्तव्यों में शामिल कर संविधान ने विश्व में समावेशी दृष्टि का उदाहरण प्रस्तुत किया है। स्पष्ट ही है, भारत के संविधान ने इंटेलेक्चुअल डेमोक्रेसी के साथ ही स्पिरिचुअल डेमोक्रेसी की स्थापना भी की है।

भारत के संविधान ने कितने विशाल लोकतांत्रिक मैकेनिज्म को स्थापित किया है, उसकी एक झलक देखिए। पहले आम चुनाव में देश में कुल 17 करोड़ से अधिक मतदाता थे जिन्होंने 53 राजनीतिक दलों के 1874 उम्मीदवारों को मत दिया जिनमें से 489 सांसद निर्वाचित हुए थे। जब 2024 में आम चुनाव हुए तब देश में मतदाताओं की संख्या करीब 80 करोड़ थी। इन्होंने 460 से अधिक राजनीतिक दलों के 8250 उम्मीदवारों को मत दिया जिनमें से 545 सांसद के रूप में चुने गये। इस हेतु 93000 मतदान केन्द्र बनाए गए और 60 लाख से अधिक कार्मिकों की तैनाती की गई। इतने बड़े निष्पक्ष और पारदर्शी मेकेनिज्म का यह विश्व का एकमात्र उदाहरण है।

स्पष्ट है, भारतीय संविधान सार्वभौमिक स्वीकृत मापदण्डों और प्रथाओं के अनुरूप लोकतंत्र की स्थापना करने में सफल रहा है। आज भारत दुनियाभर में लोकतांत्रिक मार्ग का प्रकाश स्तंभ है, एक आदर्श लोकतंत्र व गणतंत्र का उदाहरण है। इसका फलना फूलना न केवल भारत के लिए अपितु संपूर्ण विश्व के लिए मंगलकारी है। ❑

# भारतीय संविधान का आदर्श : प्रस्तावना

**डॉ. अनुपम चतुर्वेदी**
सह आचार्य
राजकीय महाविद्यालय,
पाली (राजस्थान)

भारतीय संविधान के प्रारंभ में एक प्रस्तावना दी गई है जो संविधान निर्माताओं के विचारों की कुंजी है। प्रस्तावना के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि संविधान निर्माताओं के उस समय विचार और उद्देश्य क्या थे, जब उन्होंने संविधान का निर्माण किया था। प्रस्तावना में संविधान का सार है, दर्शन है। केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि ''प्रस्तावना संविधान का भाग हैं। जहाँ संविधान की भाषा अस्पष्ट और संदिग्ध हो, वहाँ संविधान के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए प्रस्तावना का सहारा लिया जा सकता है।'' इस प्रकार प्रस्तावना भारतीय संविधान की आत्मा है।

**42वें संविधान संशोधन के बाद प्रस्तावना**

42वें संवैधानिक संशोधन (1976) के बाद भारतीय संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है–

हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनांक 26 नवम्बर, 1949 (मिती मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् 2006 विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

**प्रस्तावना की व्याख्या**

प्रस्तावना की मूल पदावली की व्याख्या निम्नानुसार है –

**हम भारत के लोग** – प्रस्तावना के इन शब्दों का अर्थ है – भारत में सम्प्रभुता जनता में निहित है। इस संविधान का निर्माण संविधान सभा के सदस्यों ने जनता की इच्छा से किया है और वे भारतीय जनता के प्रतिनिधि हैं। इस पदावली से यह भी स्पष्ट है कि संविधान का निर्माण राज्यों ने अथवा अनेक राज्यों के लोगों ने नहीं बल्कि समूचे भारत के लोगों ने किया है और न कोई इस संविधान को समाप्त कर सकता है न ही संघ से अलग हो सकता है। अंगीकृत, अधिनियमित ओर आत्मार्पित शब्दों का अभिप्राय है सत्ता जनता के हाथ में निहित है तथा भारतीय जनता ने ही संविधान को अधिनियमित और अंगीकृत किया है। अम्बेडकर के अनुसार प्रस्तावना यह स्पष्ट करती है कि 'संविधान का आधार जनता है एवं इसमें निहित अधिकार एवं प्रभुसत्ता सब जनता से प्राप्त हुई है।'

**सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न** – सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न शब्द का अभिप्राय है कि भारत अपने आन्तरिक और बाह्य मामलों में निर्णय लेने में किसी अन्य देश पर निर्भर नहीं है।

आन्तरिक क्षेत्र में भारतीय संघ के क्षेत्राधिकार पर भारत की जनता का प्रभुत्व है और बाह्य मामलों में अन्य राज्यों के

 ISSN 2581-4133

संदर्भ में पूरी तरह स्वतंत्र है उसकी विदेश नीति पर कोई प्रतिबंध नहीं है। भारत की राष्ट्रमंडल की सदस्यता उसकी सम्प्रभुता को प्रभावित नहीं करती है।

**समाजवादी** – 42वें संविधान संशोधन के पश्चात् संविधान में समाजवादी शब्द जोड़ा गया। भारत का समाजवाद लोकतांत्रिक समाजवाद है जो साम्यवादी समाजवाद से भिन्न है। भारत का लोकतांत्रिक समाजवाद मिश्रित अर्थव्यवस्था में विश्वास करता है जिसमें सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र दोनों की उपस्थिति है। भारत का समाजवाद कार्ल मार्क्स के समाजवाद की अपेक्षा गांधीवादी समाजवाद से अधिक साम्यता रखता है।

**धर्म निरपेक्ष मूल संविधान में विश्वास** – धर्म और उपासना की स्वतंत्रता पदावली पहले से ही शामिल थी लेकिन 42वें संविधान संशोधन के पश्चात् धर्म निरपेक्ष शब्द जोड़कर उसे और अधिक स्पष्ट कर दिया गया है। हमारे देश में राज्य सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करता है और उन्हें समान सरंक्षण प्रदान करता है।

**लोकतांत्रिक** – लोकतंत्र से अभिप्राय एक ऐसी व्यवस्था से है जहाँ सरकार जनता द्वारा निर्वाचित होती है तथा जो अपने कार्यों के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। इसके अनुसार निश्चित अंतराल के बाद निर्वाचन होते हैं तथा जनता को स्वतंत्रतापूर्वक मतदान का अधिकार है।

**गणराज्य** – गणराज्य से अभिप्राय ऐसी व्यवस्था से है जहाँ राज्य के प्रमुख को निर्वाचन द्वारा पद प्राप्त होता है आनुवंशिकता के आधार पर नहीं। भारत में राज्य का प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति निर्वाचन के द्वारा सत्ता में आता है। इसका चुनाव पाँच वर्ष के लिए अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।

**सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय** – प्रस्तावना में तीन प्रकार के न्याय शामिल है। मौलिक अधिकार एवं नीति निर्देशक सिद्धांतों के माध्यम से तीन न्याय सुनिश्चित किए गए हैं।

**प्रस्तावना में संशोधन सन् 1973 के केशवानंद भारती मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से स्पष्ट है कि प्रस्तावना संविधान का एक भाग है और 368 के जरिए प्रस्तावना में संशोधन किया जा सकता है बशर्ते संविधान के मूल ढाँचे में परिवर्तन नहीं किया गया हो। अब तक एक बार संशोधित किया गया है। इसके द्वारा प्रस्तावना में प्रस्तावना को एक बार 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के तहत समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं अखंडता शब्द जोड़े गए है।**

सामाजिक न्याय का अर्थ है कि किसी भी व्यक्ति के साथ जाति, रंग, धर्म, लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाए तथा समाज में विशेषाधिकार वर्ग की अनुपस्थिति।

**आर्थिक न्याय** – अनुच्छेद 39 में आर्थिक न्याय के आदर्श को स्वीकार किया गया है। आर्थिक न्याय का अर्थ है कि सभी स्त्री-पुरुष को आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो, संपदा आय एवं संपत्ति की असमानता दूर हों।

राजनीतिक न्याय का अर्थ है कि एक ऐसी व्यवस्था से है जहाँ सभी नागरिकों को समान रूप से मतदान करने, चुनाव लड़ने तथा सार्वजनिक पद प्राप्त करने का अधिकार हो।

**स्वतंत्रता** – प्रस्तावना में न्याय के बाद स्वतंत्रता को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। प्रस्तावना संविधान के भाग 3 में मूल अधिकारों के द्वारा विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता सुरक्षित रखती है।

**समता** – प्रस्तावना में प्रतिष्ठा और अवसर की समानता का भी उल्लेख किया गया है। इससे अभिप्राय यह है कि नागरिकों को अपनी प्रतिभा का पूर्ण उपयोग करने तथा बिना किसी बाधा के व्यक्तित्व के विकास का अवसर प्राप्त हो।

**व्यक्ति की गरिमा और बन्धुता** – प्रस्तावना में व्यक्ति की गरिमा राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने का उल्लेख हुआ है जिसका अर्थ है भारत में बंधुता की भावना का आधार व्यक्ति की गरिमा होनी चाहिए न कि समाज में उसकी स्थिति। राष्ट्र की एकता और अखंडता का आधार भी बंधुता की भावना होनी चाहिए।

**प्रस्तावना का महत्त्व** – भारतीय संविधान की प्रस्तावना में उस दर्शन और राजनीतिक, नैतिक, मानवीय मूल्यों का उल्लेख है जो हमारे संविधान के आधार है। पंडित ठाकुर दास भार्गव के अनुसार प्रस्तावना संविधान का सबसे सम्मानित भाग है। यह संविधान की आत्मा है। यह संविधान की कुंजी है। संविधान की प्रस्तावना संविधान निर्माताओं के विचारों तथा उद्देश्य को स्पष्ट करती है।

प्रस्तावना में संशोधन सन् 1973 के केशवानंद भारती मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से स्पष्ट है कि प्रस्तावना संविधान का एक भाग है और 368 के जरिए प्रस्तावना में संशोधन किया जा सकता है बशर्ते संविधान के मूल ढाँचे में परिवर्तन नहीं किया गया हो। अब तक एक बार संशोधित किया गया है। इसके द्वारा प्रस्तावना में प्रस्तावना को एक बार 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के तहत समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं अखंडता शब्द जोड़े गए है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना का लक्ष्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना रहा है जहाँ देश की जनता सम्प्रभु हो। प्रस्तावना संविधान के विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या करने में उपयोगी सिद्ध हो सकती है तथा अनिर्णय की स्थिति में यह पथ-प्रदर्शक हो सकती है। ❑

"मौर्यों के आने तक गणराज्य लगभग एक हजार वर्ष के हो चुके थे। यह हिन्दू गणराज्यों का स्वर्ण युग था। राष्ट्रीय समृद्धि के लिए उत्तर कुरु प्रसिद्ध था। शिक्षा के क्षेत्र में मद्र और कत्थ, शैर्य में क्षुद्रक और मालव, राजनैतिक कौशल और प्रबल स्वातंत्र्य के लिए वृच्छ व अन्धक, शक्ति के लिए वज्जि, ज्ञान और समानता के तत्त्व दर्शन व कानून के सम्मान के लिए शाक्य व उनके पड़ोसियों ने आर्यों के राष्ट्रीय जीवन तथा साहित्य पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है।"

- डॉ. के. पी. जायसवाल, हिन्दू पॉलिटी, पृ. 118

# प्राचीन भारत में गणतंत्रात्मक संवैधानिक व्यवस्था - एक अध्ययन

**डॉ. मोहनलाल साहु**
अध्यक्ष, राजस्थान क्षेत्र
भारतीय इतिहास संकलन
योजना एवं प्रदेश संयोजक
सेवानिवृत्त प्रकोष्ठ

प्राचीन भारत में हमें हड़प्पाकाल से ही सुव्यवस्थित राजनैतिक जनजीवन के अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। प्रसिद्ध विद्वान स्टुअर्ट पिगॉट ने प्राप्त अवशेषों के आधार पर हड़प्पा साम्राज्य पर दो राजधानियों द्वारा शासन करने का उल्लेख किया है। इसी प्रकार व्हीलर ने पुरोहित राजा द्वारा यहाँ के नगरों का शासन चलाने का संकेत दिया है। वैदिक काल में भारत में व्यवस्थित कानून व्यवस्था, राजनैतिक पद्धति, राजपद एवं राज्यों के सम्बन्ध में प्रचुर उल्लेख मिलता है। ऋग्वैदिक आर्य, अनेक जनों में विभक्त थे, एक ही जाति के पुरुष से उत्पन्न विभिन्न कुटुम्बों का समुदाय जन कहलाता था। राज्य की कल्पना जातिय थी। उत्तर वैदिक काल के उत्तरार्द्ध में एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक परिवर्तन हुआ। भिन्न-भिन्न भौगोलिक क्षेत्र जनों के स्थायी रूप से बस जाने के कारण जनपद (जातियों के बसने के स्थान) कहलाये। राज्य की कल्पना जातीय के स्थान पर भौगोलिक हो गयी। वैदिक काल में गणतंत्रात्मक राज्य रहे होंगे। गण शब्द ऋग्वेद में 46 बार और अथर्ववेद में 9 बार आया है। डॉ. बी.एम. ऐपटे ने लिखा है गौतम बुद्ध के समय के गणराज्यों के बीज वैदिक काल में मौजूद थे। महाभारत के शान्तिपर्व में गणराज्यों का उल्लेख मिलता है जिनमें समानता का शासन था।

महात्मा बुद्ध के काल तक आते-आते इन जनपदों का पूर्ण विकास हो चुका था। भारत अनेक छोटे बड़े राज्य में विभक्त था। जिनमें कुछ राजतंत्र एवं कुछ गणराज्य थे। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार समस्त देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक जनपदों का जाल फैल गया था। एक प्रकार से जनपद राजनैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन की इकाई बन गये थे। इस समय भारत की राजनैतिक स्थिति तत्कालीन यूनान की स्थिति के समान थी यद्यपि भारत के कुछ राज्य यूनानी राज्यों से काफी बड़े थे। सीमा विस्तार की भावना और पारस्परिक युद्ध से जनपद अपेक्षाकृत विस्तृत हो गये तथा महाजनपद कहलाने लगे।

बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तर निकाय एवं जैन ग्रन्थ भगवती सूत्र में इस समय के प्रमुख 16 महाजनपदों की सूची दी गयी है। इनमें कुछ में राजतंत्रात्मक एवं कुछ में गणतंत्रात्मक शासन व्यवस्था थी। बौद्ध साहित्य के अनुसार इस समय के 10 गणराज्य थे-कपिलवस्तु के शाक्य, रामगाम के कोलिय, पावाँ के मल्ल, कुशीनारा के मल्ल, पिपलीवन के मोरिय, मिथिला के विदेह, सुसुमार पर्वत के भग्ग, अल्लक्प्प के बुलि, केससुत के कालाम तथा वैशाली के लिच्छवी। नेपाल की एक वंशावली में लिच्छवियों को सूर्यवंशी बताया है।

हमारे वर्तमान संविधान में वर्णित संघात्मक गणतांत्रिक व्यवथा का स्वरूप आज से 2800 वर्ष पूर्व के भारत के इन गणराज्यों में स्पष्ट दिखायी देता है। इनमें सबसे शक्तिशाली संघ राज्य वाज्जि संघ था, जो उस समय के 8 राज्यों का गणतंत्रात्मक संघ था, जिसमें वज्जि, लिच्छवी, विदेह और ज्ञात्रिक विशेष महत्त्वपूर्ण थे। इसमें उग्र, भोज, कोरव एवं ऐक्ष्वाकु भी थे। यद्यपि उस समय की यह व्यवस्था निरन्तर अस्तित्व में नहीं रही तथापि भारत में संवैधानिक विकास की दृष्टि से इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। आज भी हमारी संसदीय व्यवस्था में प्राचीन गणतंत्रात्मक संसदीय व्यवस्था का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है। इन गणराज्यों के कानून विधान एवं शासन पद्धति का संग्रह हमें तत्कालीन साहित्य में मिलता है।

पाणिनी ने अपने व्याकरण ग्रन्थ अष्टाध्यायी में संघ राज्यों का उल्लेख किया है और संघ व गण को समानार्थक शब्द बताया है। पाणिनी ने राजतंन्त्र व गणराज्य दोनों का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने लिच्छवी गणराज्य के लिए राजा शब्दोपजीवी संघ शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ बौद्ध ग्रन्थ ललित विस्तार के अनुसार वहाँ का प्रत्येक मनुष्य स्वयं को राज्य का राजा समझता हो। न

 ISSN 2581-4133

कोई किसी से छोटा और न बडा वरन् सब समान हैं। बौद्ध ग्रन्थ अट्ठकथा एवं एक पण्ण जातक में लिच्छवी गणराज्य का शासन 7707 राजाओं द्वारा संचालित करने का उल्लेख है। यहाँ राजाशब्द का उल्लेख विभिन्न प्रशासनिक अधिकारियों के लिए है। ये विभिन्न कुटुम्बों के प्रधान हाते थे जिनसे शासक सभा का गठन किया जाता था। यूनानी लेखक स्ट्रेबों के विवरण से हमें जानकारी मिलती है कि एक भारतीय गणराज्य की शासक सभा के सदस्यों की संख्या 5000 थी। इन्हें राजा कहा जाता था। इनमें से एक व्यक्ति को निर्वाचन के द्वारा नायक बनाया जाता था। वही गणराज्य का प्रमुख या राष्ट्रपति होता था। शाक्य गणराज्य के प्रधान इस प्रकार के निर्वाचित राजा गोतम बुद्ध के पिता शुद्धोधन थे। ललित विस्तार में शाक्यों की शासन परिषद् की सदस्य संख्या 500 बतायी गयी है। ये सभी राजा की उपाधि से विभूषित थे। उस समय की शासन परिषद का स्वरूप वर्तमान संसद जैसा ही था।

प्रमुख या राजकार्य में राजाओं की सहायता के लिए उपराजा, सेनापति भण्डारिक आदि पदाधिकारी होते थे। शक्ति पृथक्करण एवं विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त भी अस्तित्व में था। प्रत्येक इकाई का प्रमुख राजा होता था, जो पदाधिकारियों की सहायता से अपनी इकाई का शासन संचालित करता था। राजा गणराज्य की केन्द्रीय एवं सर्वोच्च सभी संस्था के सदस्य होते थे। लघु इकाइयों की इस प्रकार की विकेन्द्रित शासन व्यवस्था के कारण लिच्छवियों के गणराज्य को प्रजातंत्र का सबसे अच्छा उदाहरण माना जाता है। संभवतया प्रत्येक कुटुम्ब या कबीला उस समय का संसदीय क्षेत्र था, जहाँ से राजा चुनकर आता था और केन्द्रीय सभा का सदस्य बनता था।

तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था, कानून निर्माण एवं न्याय व्यवस्था का संचालन भी एक निर्धारित प्रक्रिया के तहत होता था। गणराज्यों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संवैधानिक इकाई सभा अथवा संस्था होती थी, जिसकी कार्यवाही का संचालन नियमबद्ध तरीके से होता था। संस्था के अधिवेशन स्थल को संथागार कहा जाता था जहाँ पर सदस्यों के बैठने के लिए आसनों की व्यवस्था आसन पन्नापक नाम का अधिकारी करता था। अधिवेशन के लिए गणपूर्ति या कौरम आवश्यक था। डॉ. घोषाल के अनुसार गणपूर्ति का नियम बौद्ध संघ में भी था। सभा के सदस्यों में से एक सदस्य पर इस बात का दायित्व होता था कि वह न्यूनतक आवश्यक संख्या में सदस्यों को सभा में उपस्थित करने का प्रयास करें। उसे गणपूरक कहा जाता।

सभा में प्रस्ताव रखने के लिए निश्चित नियम थे। प्रस्ताव पेश करने के बाद प्रस्तोता द्वारा उसे तीन बार दोहराया (अनुस्सावं) जाता था ताकि सभा में उपस्थित सभी सदस्य उसे ध्यान से सुन सकें। इनके बाद गण सदस्यों से यह पूछा जाता था कि क्या वे इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हैं जो सदस्य मौन रहते थे उनको सहमत मान लिया जाता था। अन्य सदस्यों द्वारा बाद विवाद किया जाता था। सदस्यों के एकमत न होने पर मतदान से निर्णय कराया जाता था। मत या वोट को छन्द कहा जाता था। मत कराने में अध्यक्ष का पर्याप्त हस्तक्षेप होता था। मतदान की प्रक्रिया के अन्तर्गत सभी सदस्यों को अलग-अलग रंग की शलाकाऐं दी जाती थी। प्रत्येक रंग की शलाका एक विशेष दृष्टिकोण या मत की सूचक होती थी। सदस्य को कहा जाता था कि वे उस रंग की शलाका का चयन करे जो अपने मत की सूचक हो और वे अपनी शलाका किसी को न दिखायें। इससे स्पष्ट है कि गुप्त मतदान पर विशेष ध्यान दिया जाता था। एक अधिकारी इन सभी शलाकाओं को इकट्ठा करता था। इस अधिकारी को शलाका ग्राहपक (मतदान अधिकारी) कहा जाता था। शलाका संग्रह का कार्य गोपनीय एवं खुले ढंग दोनों प्रकार से किया जाता था। विवाद ग्रस्त प्रश्नों के सताधान के दो तरीके और थे ऐसे प्रश्न पर किसी पड़ोसी संघ से निर्णय करने एवं सलाह हेतु अनुरोध किया जाता था या ऐसे प्रश्न के समाधान का उत्तरदायित्व कुछ व्यक्तियों के समिति को सौंपा जाता था जिसे उब्बाहिक समिति कहा जाता था, जिसका निर्णय सभी को मान्य होता था। इसकी तुलना हम

वर्तमान संसदीय समिति से कर सकते हैं।

शासन कार्य के दैनिक संचालन हेतु गणराज्यों की सभा या संस्था द्वारा एक मंत्रीपरिषद् का भी गठन किया जाता था। जैन ग्रन्थ कल्पसूत्र में नव मल्लाई (नौ मल्ल राजा) एवं नव लेच्छई (नौ लिच्छनी राजा) का उल्लेख है, जो महावीर स्वामी की मृत्यु की रात्रि में दीपोत्सव प्रसंग के संदर्भ में उपस्थित हुये थे। संभवतया ये मंत्री परिषद् के सौ सदस्य थे। विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों का प्रमुख राजा को बनाया जाता था, ये उस समय के मंत्री ही थे।

केन्द्रीय सभा के अतिरिक्त एक सार्वजनिक सभा के अस्तित्व के संकेत भी लिच्छवी या वाज्जि गणराज्य संघ के मिलते हैं। बौद्ध ग्रन्थ महापरिनिब्बान सुत्त से इसकी पुष्टि होती है। इस प्रकार के उल्लेख से स्पष्ट है कि कुछ गणराज्यों में द्विसदनीय संसदीय व्यवस्था भी थी। इसी ग्रन्थ में वाज्जि गणराज्य के लिए सात अपरिहानिय धम्म (सात अपहरिहार्य नियम) का उल्लेख किया गया जिनका पालन करना उस राज्य के निरन्तर अस्तित्व के लिये आवश्यक है –

1. निर्धारित समय पर सभी सदस्यों की उपस्थिति के साथ सभा का अधिवेशन हो।

2. समग्र (सहमत) भाव से संघ में उपस्थित (समग्गा सन्निपतिस्संति), समग्रभाव से अधिवेशन की समाप्ति (समग्गा बुट्ठहिस्सत) तथा समग्र भाव से संघ के कार्यों का निष्पादन (समग्गा संघ करणीयानि करिस्सति)।

3. जो स्वीकृत नहीं हुआ है उसे स्वीकार नहीं करना जो स्वीकृत है उसका उल्लंघन नहीं करना तथा वाज्जि संघ के पूर्व स्वीकृत विधानों के अनुसार कार्य करना।

4. वज्जि संघ के जो बड़े बूढ़े (संघपितर) है और जो नेता है (संघ परिणायक) हैं, उनका आदर सत्कार करना।

5. वज्जिसंघ के चैत्यों (मन्दिर) में पूजा कार्य की निरन्तरता बनाये रखना तथा पूर्व काल से निर्धारित धार्मिक क्रिया कलापों को जारी रखना।

6. वज्जिसंघ के धार्मिक अरिहन्तो (महापुरुषों) का सम्मान करना।

7. वज्जिसंघ के वृद्धों (महल्लकों) का आदर सत्कान करना।

इन नियमों से तत्कालीन गणराज्यों के प्रजातांत्रिक एवं लोककल्याणकारी राज्य के स्वरूप की जानकारी मिलती है।

गणराज्यों का न्यायिक विधान की अत्यधिक लोकतंत्रात्मक एवं अद्‌भुत था। बुद्धघोष की अट्ठकथा से हमें इस व्यवस्था की विस्तृत जानकारी मिलती है। अपराध की गहन छानबीन करने के बाद ही अपराधी को दण्ड दिया जाता था। नज्जि संघ में अपराधी की जाँच पड़ताल एवं न्याय परीक्षा सात विशेषज्ञ पदाधिकारियों अथवा न्यायालय द्वारा की जाती थी। 1. विनिश्चय महामात (विनिश्चय महाभात्र), 2. वोहारिक (व्यवहारिक), 3. सुत्तधार (सुत्रधार), 4. अट्ठकुलिक (अष्ट कुलिक), 5. सेनापति, 6. उपराजा और 7. राजा।

सर्वप्रथम अभियुक्त की विनिश्चय महामात्र के पास लाया जाता था, जो तथ्यों की प्रारम्भिक जाँच करता था। प्रथम दृष्टया निर्दोष होने पर विनिश्चय महामात्र अपराधी को मुक्त कर सकता था। परन्तु दोषी लगने वाले अभियुक्त को सजा नहीं दे सकता था, बल्कि उसे अपनी उच्च अदालत के पास भेज देता था। यह क्रम अन्तिम न्यायालय राजा तक चलता था। अन्तिम निर्णय और दण्ड का अधिकार राजा के पास था। राजा द्वारा दण्ड का निर्धारण मनमाने तरीके से नहीं किया जाता था। इसके लिये पवेणी पोत्थक (दण्ड संहिता) ग्रन्थ की सहायता ली जाती थी। जिसमें अपराध एवं दण्ड के पुराने उदाहरणों का संकलन होता था। उपरोक्त न्याय व्यवस्था के अनुसार वज्जिसंघ गणराज्य में प्रत्येक व्यक्ति का जीवन किसी भी प्रकार की न्यायिक स्वेच्छाचारिता एवं पक्षपात से पूर्णत: मुक्त था। उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं सुरक्षा भावना का पूर्ण आदर किया जाता था। नागरिक सुरक्षा की इतनी अच्छी व्यवस्था संसार में बहुत कम देखने को मिलती है।

ये गणराज्य राजतंत्र प्रधान युग के सफल गणतंत्रात्मक प्रयोग थे। लेकिन दुर्भाग्यवश इनकी सफलता दीर्घ दीर्घकालिक नहीं रह सकी और नवोदित शक्तिशाली राजतंत्रों ने इन्हें अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा का शिकार बना लिया तथा इन पर अधिकार करके इनका अस्तित्व समाप्त कर दिया। ❑

 ISSN 2581-4133

# संविधान भारत की आत्मा

**डॉ. कुलदीप सिंह**
सहायक प्रोफेसर गणित
राजकीय कन्या महाविद्यालय, रतिया
जिला फतेहाबाद (हरियाणा)

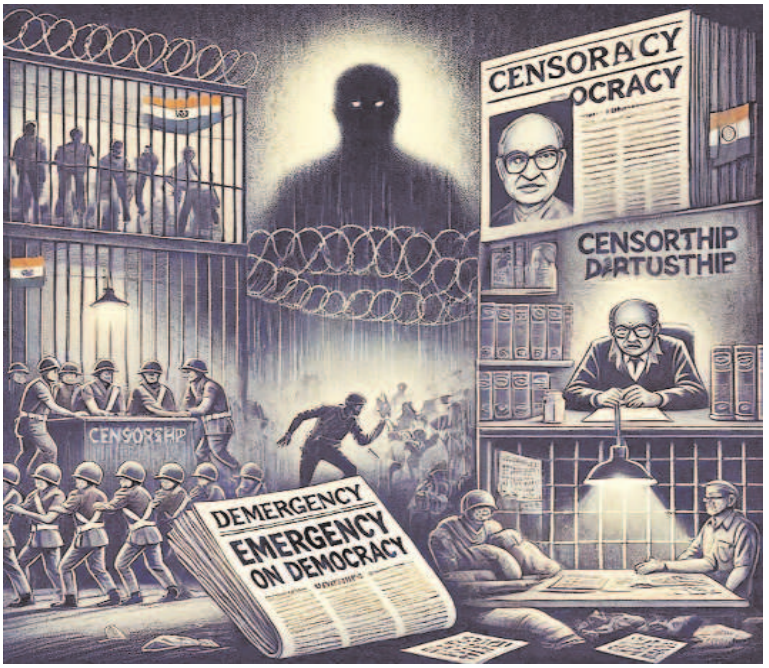


भारत के लोकतांत्रिक इतिहास में 25 जून 1975 से 21 मार्च 1977 तक का समय एक ऐसा काला अध्याय है जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। इस अवधि में भारत में आपातकाल घोषित किया गया था, जो भारतीय राजनीति और समाज के लिए एक अभिशाप साबित हुआ। संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों और लोकतांत्रिक मूल्यों के विपरीत, आपातकाल ने सत्ता का अत्यधिक केंद्रीकरण, नागरिक स्वतंत्रता का हनन और अभिव्यक्ति की आजादी पर अंकुश लगाने का काम किया। आपातकाल का उद्देश्य भले ही आंतरिक अस्थिरता और कानून-व्यवस्था को सुधारना था, लेकिन इसका प्रभाव पूरे राष्ट्र पर नकारात्मक रूप से पड़ा।

**आपातकाल की पृष्ठभूमि**

आपातकाल की पृष्ठभूमि को समझने के लिए 1970 के दशक के राजनीतिक घटनाक्रम पर गौर करना जरूरी है। उस समय देश में राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक अशांति और आर्थिक संकट के चलते स्थिति लगातार बिगड़ रही थी। 1971 में भारत-पाकिस्तान युद्ध के बाद देश की आर्थिक स्थिति कमजोर हो गई थी। पेट्रोलियम उत्पादों की कीमतों में बढ़ोतरी और खाद्यान्न की कमी से महंगाई चरम पर थी। इसके अलावा, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार ने जनता में असंतोष और आक्रोश पैदा किया। इस राजनीतिक अस्थिरता के बीच, इलाहाबाद हाईकोर्ट ने 12 जून 1975 को प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के चुनाव को अवैध घोषित कर दिया। इस फैसले ने भारतीय राजनीति में उथल-पुथल मचा दी और इंदिरा गांधी के नेतृत्व को गंभीर चुनौती दी।

**आपातकाल भारतीय लोकतंत्र पर एक गहरा धब्बा है। इसने यह दिखाया कि सत्ता का अत्यधिक केंद्रीकरण और सत्तावादी नीतियाँ किस तरह से नागरिक स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक मूल्यों का हनन कर सकती हैं। हालांकि आपातकाल का समय बीत गया, लेकिन इसके प्रभाव और इसके द्वारा दिए गए सबक भारतीय राजनीति और समाज में हमेशा बने रहेंगे। आपातकाल भारतीय लोकतंत्र के लिए एक अभिशाप था, लेकिन इसने जनता और राजनीति को लोकतांत्रिक मूल्यों की अहमियत सिखाई।**

इसी समय जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में 'संपूर्ण क्रांति' आंदोलन ने जोर पकड़ लिया था, जिसका उद्देश्य भ्रष्टाचार, बेरोजगारी और महंगाई के खिलाफ आवाज उठाना था। इंदिरा गांधी की सरकार को इस आंदोलन से गंभीर खतरा महसूस हुआ। इन सब हालातों को देखते हुए, प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 25 जून 1975 की रात को राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद के माध्यम से आपातकाल की घोषणा कर दी। इस घोषणा के साथ ही संविधान के अनुच्छेद 352 के तहत देश में आपातकाल लागू हो गया, जिसमें नागरिक अधिकारों को स्थगित कर दिया गया और प्रेस पर सेंसरशिप लागू कर दी गई।

**आपातकाल के कारण**

आपातकाल लागू करने के कई कारण बताए जाते हैं, जिनमें प्रमुख हैं -

**1. आंतरिक अशांति और राजनीतिक अस्थिरता** - जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में हो रहे विरोध प्रदर्शन और उनके 'संपूर्ण क्रांति' आंदोलन ने देश भर में अस्थिरता की स्थिति पैदा कर दी थी। इंदिरा गांधी की सरकार को लगा कि अगर इन विरोधों को रोका नहीं गया, तो सरकार गिर सकती है।

**2. न्यायिक चुनौती** – इलाहाबाद हाईकोर्ट द्वारा इंदिरा गांधी के चुनाव को अवैध ठहराने के बाद उनकी राजनीतिक स्थिति कमजोर हो गई थी। इस फैसले के बाद उनके पास सत्ता में बने रहने का संवैधानिक आधार नहीं बचा था। अपनी कुर्सी बचाने के लिए उन्होंने आपातकाल का सहारा लिया।

**3. विध्वंसकारी आर्थिक स्थिति** – उस समय की आर्थिक स्थिति भी आपातकाल का कारण बनी। 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के बाद देश की आर्थिक स्थिति कमजोर हो गई थी। महंगाई, बेरोजगारी और आर्थिक असंतुलन से जनता में असंतोष था, जो सरकार की नीतियों के खिलाफ आंदोलन को बढ़ावा दे रहा था।

**4. सत्तावादी झुकाव** – इंदिरा गांधी के नेतृत्व में सत्ता का केंद्रीकरण बढ़ गया था। वे अपने विरोधियों को दबाने और अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए सत्तावादी नीतियों को अपनाने लगीं। आपातकाल इसी सत्तावादी झुकाव का परिणाम था।

**आपातकाल के दौरान घटनाएँ**

आपातकाल लागू होते ही देश में कई महत्त्वपूर्ण बदलाव हुए। सबसे पहला असर नागरिक स्वतंत्रता पर पड़ा। संविधान द्वारा दिए गए मौलिक अधिकार, जैसे कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रेस की स्वतंत्रता, और जनसभाएँ करने का अधिकार, सभी को स्थगित कर दिया गया। प्रेस पर कठोर सेंसरशिप लगाई गई और जो भी सरकार के खिलाफ बोलने या लिखने की कोशिश करता, उसे जेल में डाल दिया गया।

सरकार ने बड़े पैमाने पर राजनीतिक विरोधियों की गिरफ्तारी का अभियान चलाया। जयप्रकाश नारायण, मोरारजी देसाई, अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी सहित सैकड़ों विपक्षी नेताओं और कार्यकर्ताओं को जेल में डाल दिया गया। आपातकाल के दौरान बिना वारंट गिरफ्तारी, बिना मुकदमा चलाए जेल में डालना और राजनीतिक असहमति का दमन एक आम बात हो गई थी।

सरकार ने उस समय संजय गांधी के नेतृत्व में नसबंदी का अभियान चलाया, जिसे एक बड़े सामाजिक सुधार के रूप में प्रस्तुत किया गया। लेकिन इसके क्रियान्वयन में लोगों की जबरन नसबंदी कराई गई, जिससे जनता में और आक्रोश फैल गया। इस अभियान की क्रूरता ने आम जनता के मन में आपातकाल के प्रति घृणा और आक्रोश को और बढ़ा दिया।

**आपातकाल का प्रभाव**

आपातकाल ने भारतीय लोकतंत्र और समाज पर गहरा प्रभाव डाला। यह वह समय था जब भारत का लोकतांत्रिक ढाँचा कमजोर हो गया और सत्ता का अत्यधिक केंद्रीकरण हुआ। सरकार ने जनता की स्वतंत्रता और अधिकारों का उल्लंघन किया, जिससे लोकतांत्रिक संस्थाओं की विश्वसनीयता कम हो गई।

**1. लोकतंत्र का हनन** – आपातकाल के दौरान सबसे बड़ा आघात लोकतंत्र को लगा। भारतीय जनता ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से जो लोकतांत्रिक अधिकार हासिल किए थे, उन्हें जबरन छीन लिया गया। जनता के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ और विपक्ष की आवाज़ को पूरी तरह दबा दिया गया।

**2. प्रेस पर सेंसरशिप** – आपातकाल के दौरान प्रेस पर लगाए गए सेंसरशिप ने स्वतंत्र पत्रकारिता को बाधित किया। मीडिया को सरकार के पक्ष में समाचार प्रकाशित करने के लिए मजबूर किया गया। किसी भी विरोधाभासी समाचार को रोकने के लिए सख्त नियम बनाए गए। इसने लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में मीडिया की भूमिका को कमजोर कर दिया।

**3. मानवाधिकारों का उल्लंघन** – आपातकाल के दौरान बड़े पैमाने पर मानवाधिकारों का उल्लंघन हुआ। राजनीतिक असंतोष को कुचलने के लिए सरकार ने सैकड़ों लोगों को बिना किसी सुनवाई के जेल में बंद कर दिया। नसबंदी जैसे कठोर अभियान ने जनता में सरकार के प्रति भय और आक्रोश पैदा कर दिया।

**4. विपक्ष की मजबूती** – आपातकाल के बाद विपक्षी दलों की एकजुटता ने भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ लिया। 1977 में जब आपातकाल समाप्त हुआ और चुनाव हुए, तो जनता ने इंदिरा गांधी की सरकार को सत्ता से बाहर कर दिया। विपक्षी दलों ने जनता पार्टी का गठन किया और पहली बार गैर-कांग्रेसी सरकार केंद्र में आई।

**आपातकाल का अंत और सबक**

21 मार्च 1977 को आपातकाल समाप्त हुआ, और देश में फिर से सामान्य लोकतांत्रिक प्रक्रियाएँ बहाल की गईं। आपातकाल के बाद हुए चुनावों में जनता ने इंदिरा गांधी और उनकी सरकार को सत्ता से बेदखल कर दिया। जनता पार्टी की सरकार बनी और देश ने फिर से लोकतांत्रिक व्यवस्था की वापसी देखी।

आपातकाल ने भारतीय लोकतंत्र को कई महत्त्वपूर्ण सबक दिए। इसने यह साबित किया कि चाहे कितना भी कठोर शासन क्यों न हो, लोकतंत्र की जड़ें बहुत गहरी होती हैं। आपातकाल के दौरान जो अत्याचार हुए, उन्होंने देश को सिखाया कि लोकतांत्रिक अधिकारों की सुरक्षा और स्वतंत्रता का सम्मान कितना आवश्यक है।

**निष्कर्ष**

आपातकाल भारतीय लोकतंत्र पर एक गहरा धब्बा है। इसने यह दिखाया कि सत्ता का अत्यधिक केंद्रीकरण और सत्तावादी नीतियाँ किस तरह से नागरिक स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक मूल्यों का हनन कर सकती हैं। हालांकि आपातकाल का समय बीत गया, लेकिन इसके प्रभाव और इसके द्वारा दिए गए सबक भारतीय राजनीति और समाज में हमेशा बने रहेंगे। आपातकाल भारतीय लोकतंत्र के लिए एक अभिशाप था, लेकिन इसने जनता और राजनीति को लोकतांत्रिक मूल्यों की अहमियत सिखाई।

भारत की लोकतांत्रिक यात्रा ने आपातकाल के अंधकार से उभरते हुए अपने लिए एक बेहतर और स्वतंत्र भविष्य का निर्माण किया। ❑

## लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना और

# भारतीय संविधान

**बिजय कुमार बेहरा**
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, गुरु घासीदास केंद्रीय विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

आज के समय में, जब आर्थिक असमानता, सामाजिक भेदभाव और आधारभूत सुविधाओं की कमी जैसे मुद्दे भारतीय समाज के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ बने हुए हैं, लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा और भी महत्त्वपूर्ण हो गई है। भारतीय संविधान, जिसे भारत की सामाजिक और आर्थिक संरचना को सुधारने के उद्देश्य से तैयार किया गया था, लोक कल्याणकारी राज्य के आदर्शों को मूर्त रूप देने का प्रयास करता है। लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा आधुनिक राजनीति के उन प्रमुख सिद्धांतों में से एक है, जो राज्य और उसके नागरिकों के बीच संबंधों को परिभाषित करती है। इस सिद्धांत के अनुसार, राज्य का दायित्व केवल कानून और व्यवस्था बनाए रखने तक सीमित नहीं है, बल्कि उसे नागरिकों के सामाजिक और आर्थिक कल्याण के लिए सक्रिय रूप से कार्य करना चाहिए। भारतीय संविधान ने इस अवधारणा को अपनाया और उसे अपने विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से साकार किया।

**भारतीय संविधान में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा और उसकी प्रासंगिकता**

लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की उत्पत्ति यूरोप में 19वीं और 20वीं शताब्दी के सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक परिवर्तनों के साथ हुई। भारत में यह अवधारणा स्वतंत्रता के बाद विकसित हुई, जब संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों ने राज्य को समाज के सभी वर्गों के कल्याण के लिए नीतियाँ बनाने का निर्देश दिया। इसकी जड़ें औद्योगिक क्रांति के बाद की सामाजिक असमानताओं में देखी जा सकती हैं। प्रारंभिक कल्याणकारी नीतियों का उद्भव

**भारतीय संविधान के अंतर्गत, लोक कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य केवल गरीबी उन्मूलन नहीं, बल्कि नागरिकों के समग्र कल्याण को सुनिश्चित करना है। मनरेगा, प्रधानमंत्री आवास योजना, और खाद्य सुरक्षा योजना जैसी नीतियाँ समाज के कमजोर वर्गों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती हैं, साथ ही सामाजिक न्याय और समानता को भी बढ़ावा देती हैं। यह संविधान के तहत राज्य की जिम्मेदारी है कि वह सभी नागरिकों के लिए समृद्धि और सशक्तिकरण सुनिश्चित करे।**

जर्मनी में 1880 के दशक में हुआ, जबकि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, कई देशों ने इसे अपनाया। ब्रिटेन के 1942 के बेवरेज रिपोर्ट ने 'क्रैडल टू ग्रेव' सुरक्षा की वकालत की। लोक कल्याणकारी राज्य का मुख्य उद्देश्य नागरिकों की बुनियादी जरूरतों को पूरा करना है। विभिन्न देशों ने इसे अपने सामाजिक और आर्थिक संदर्भों के अनुसार अपनाया और नीतियों में शामिल किया।

भारतीय संविधान में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया गया है, जो समाज के सभी वर्गों की भलाई और विकास पर केंद्रित है। यह अवधारणा संविधान के अनुच्छेद 14 से 32 तक और अनुच्छेद 39, 41, 42, और 47 में स्पष्ट रूप से वर्णित है। इन अनुच्छेदों के माध्यम से नागरिकों के मूल अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित की गई है, जो समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित है। लोक कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को समाप्त करना है, जिससे प्रत्येक नागरिक को उनकी बुनियादी आवश्यकताएँ, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार, उपलब्ध हो सकें। यह सुनिश्चित करता है कि राज्य अपने नागरिकों के प्रति उत्तरदायी है और उनकी भलाई के लिए नीतियाँ बनाता है।

वर्तमान समय में, लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ गई है, विशेषकर जब हम कोविड-19 महामारी, आर्थिक मंदी, और जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। इन संकटों ने स्पष्ट किया है कि राज्य की भूमिका केवल कानून-व्यवस्था बनाए रखने तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसे नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा और कल्याण के लिए सक्रिय कदम उठाने चाहिए। सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ, स्वास्थ्य सेवाएँ, और शिक्षा तक पहुँच सुनिश्चित करना, लोक कल्याणकारी राज्य की प्रमुख जिम्मेदारियाँ हैं। इस प्रकार, भारतीय संविधान की लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा एक आवश्यक और व्यावहारिक मॉडल है, जो न केवल आज की जरूरतों को पूरा करता है, बल्कि एक सशक्त और समृद्ध समाज की नींव भी रखता है।

**लोक कल्याणकारी राज्य और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी महत्ता**

लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा आज के समय में अत्यधिक प्रासंगिक है, खासकर जब समाज आर्थिक असमानता, बेरोजगारी और सामाजिक भेदभाव जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है। इस राज्य व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य नागरिकों की भलाई सुनिश्चित करना है, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा जैसी बुनियादी सेवाओं की प्राथमिकता होती है। वर्तमान समय में, यह भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण हो गई है, क्योंकि वैश्विक महामारी, जलवायु परिवर्तन और आर्थिक अस्थिरता ने समाज के कमजोर वर्गों को अत्यधिक प्रभावित किया है।

लोक कल्याणकारी राज्य का महत्त्व इस बात में है कि यह समाज के सभी वर्गों के लिए समान अवसर और न्याय सुनिश्चित करने का प्रयास करता है। यह केवल कानून और व्यवस्था बनाए रखने तक सीमित नहीं है, बल्कि नागरिकों की जीवन स्थितियों को सुधारने और उन्हें आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त बनाने के लिए भी कार्य करता है। महामारी के दौरान, इस अवधारणा की प्रासंगिकता स्पष्ट हुई, जब सरकारों ने बड़े पैमाने पर राहत योजनाएँ और स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान कीं।

**भारतीय ज्ञान परंपरा और समकालीन परिप्रेक्ष्य में कल्याणकारी राज्य की भूमिका**

भारतीय ज्ञान परंपरा, जो हजारों वर्षों का समृद्ध इतिहास समेटे हुए है, समाज के कल्याण और समग्र विकास का एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। प्राचीन भारत में, ज्ञान और शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत विकास नहीं था, बल्कि यह समाज की

 ISSN 2581-4133

भलाई और सामूहिक चेतना को बढ़ावा देने का भी माध्यम था। वेद, उपनिषद, और अन्य धार्मिक ग्रंथों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि राजाओं और शासकों का कर्तव्य था कि वे अपनी प्रजा के कल्याण का ध्यान रखें। इस परंपरा में 'धर्म' का अर्थ केवल धार्मिक गतिविधियों तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें नैतिकता, सामाजिक जिम्मेदारी और मानवता की सेवा का भाव भी समाहित था। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा ने कल्याणकारी राज्य की नींव रखी, जो समाज के सभी वर्गों के लिए न्याय और समानता सुनिश्चित करती है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में कल्याणकारी राज्य की भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण हो गई है। आज, जब समाज विभिन्न सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों का सामना कर रहा है, जैसे कि गरीबी, बेरोजगारी और स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, तब राज्य की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। भारतीय संविधान ने राज्य को नागरिकों के कल्याण की जिम्मेदारी सौंपी है, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा जैसी बुनियादी सुविधाएँ शामिल हैं। वर्तमान में, सरकारें विभिन्न योजनाओं और नीतियों के माध्यम से नागरिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने और उन्हें सशक्त बनाने का प्रयास कर रही हैं। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम और महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम जैसे कार्यक्रम नागरिकों को बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति में मदद करते हैं।

**सामाजिक कल्याण की दिशा में भारतीय राज्य की भूमिका**

भारतीय राज्य की भूमिका लोक कल्याण की दिशा में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जो समाज के सभी वर्गों के कल्याण और विकास के लिए विविध योजनाओं और नीतियों का निर्माण करता है। भारतीय संविधान में दिये गये नीति निर्देशक सिद्धांतों के तहत, राज्य को यह निर्देशित किया गया है कि वह ऐसी नीतियों को लागू करे, जो विशेष रूप से समाज के कमजोर

वर्गों, जैसे कि अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ और अन्य पिछड़े वर्गों के लाभ के लिए हो। लोक कल्याणकारी योजनाएँ, जैसे कि महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), प्रधानमंत्री आवास योजना, खाद्य सुरक्षा योजना और स्वच्छ भारत अभियान, इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए महत्त्वपूर्ण साधन हैं। मनरेगा से ग्रामीणों को 100 दिन का रोजगार और आर्थिक सुरक्षा मिलती है, जबकि प्रधानमंत्री आवास योजना गरीबों को सस्ती आवास देती है। खाद्य सुरक्षा योजना हर नागरिक को उचित मूल्य पर खाद्यान्न उपलब्ध कराती है, जिससे पोषण और स्वास्थ्य सुनिश्चित होते हैं। ये योजनाएँ आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देती हैं।

**यथा राजाः प्रजाः सुखं**
**यत्र चित्तं सदा स्थिरम्।**
**तदात्मनं सुखं राज्यम्,**
**लोककल्याणकारिणम्।।**

**अर्थ : जहाँ राजा अपने प्रजा को सुख प्रदान करता है और वहाँ लोगों का मन सदा स्थिर एवं संतुलित रहता है, वही राज्य सुखदायक और लोक कल्याणकारी कहलाता है। इसका संदेश है कि एक सही और न्यायपूर्ण शासन व्यवस्था केवल तब संभव है जब राजा अपने नागरिकों की भलाई का ध्यान रखे और उनके सुख-समृद्धि के लिए प्रयासरत रहे। ऐसे राज्य में सामाजिक समरसता एवं शांति का वातावरण होता है।**

**निष्कर्ष**

एक प्रभावी लोक कल्याणकारी राज्य का निर्माण केवल योजनाओं की शुरुआत नहीं, बल्कि उनके सफल कार्यान्वयन और सतत निगरानी पर निर्भर करता है। हालांकि, यह भी सच है कि अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा केवल योजनाओं की शुरुआत तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि इन योजनाओं के प्रभावी कार्यान्वयन और जमीनी स्तर पर उनकी निगरानी भी महत्त्वपूर्ण है। अगर योजनाएँ सही तरीके से लागू नहीं की जाती या उन पर निगरानी नहीं रखी जाती, तो उनका लाभ कमजोर वर्गों तक नहीं पहुँच सकेगा। इसलिए, यह आवश्यक है कि सरकार न केवल योजनाओं को लागू करे, बल्कि उनकी प्रगति और प्रभाव को लगातार जाँचती रहे ताकि ये सुनिश्चित किया जा सके कि वे वास्तव में अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर रही हैं और समाज के सभी वर्गों के कल्याण में योगदान कर रही हैं। ❑

# संविधान निर्माण के भारतीय स्रोत

**डॉ. अरुणा शर्मा**
सचिव,
राजस्थान स्टेट
ओपन स्कूल, जयुपर

संविधान हमारे राष्ट्र के नियमों, न्याय-सिद्धांतों, शासन-प्रणाली और नागरिक-अधिकारों एवं जिम्मेदारियों का सर्वोच्च आलेख है। दुनिया के सबसे लंबे इस संविधान को बनाने में 2 वर्ष 11 महीने और 17 दिन का समय लगा था। इसके 389 निर्माता भारत के विभिन्न तबकों और राज्यों से थे। निर्माताओं की इस विविध समिति से ये सुनिश्चित हो गया था कि भारत के हर भाग, विचार एवं नागरिक का प्रतिनिधित्व हमारे संविधान में होगा। हमारे संविधान के सभी सिद्धांतों का आधार एवं संविधान निर्माण का मुख्य स्रोत भारत को भारत बनाने वाले भारतीय मूल्य हैं।

किसी भी देश के नियम-कानून के निर्माण के अनेक स्रोत होते हैं, जैसे कि अदालत में लिए गए निर्णय, दूसरे देशों के नियम-कानून, और संबंधित देश के रीति-रिवाज। भारतीय संविधान के निर्माण का भी एक महत्त्वपूर्ण स्रोत हमारे रीति-रिवाज, हमारी संस्कृति है। भारत के संविधान के निर्माताओं ने इस वृहद भारत की विविधता और सांस्कृतिक समरसता को मद्देनजर रखते हुए इस दस्तावेज का ढाँचा हमारे समाज के अनुरूप विकसित किया गया था। और इसी भारतीय शैली का प्रमाण संविधान की प्रस्तावना से लेकर उसमें दिए गए मौलिक अधिकारों, परिभाषित न्याय एवं लोकतंत्र की रूपरेखा में मिलता है।

Article - 1: India, that is, Bharat, is a union of states.

संविधान का सबसे पहला अनुच्छेद हमारे राष्ट्र को इसके सभी राज्यों का संगठन 'भारत' बोलकर संबोधित करता है। भारतीय संविधान का पहला ही अनुच्छेद हमारे राष्ट्र की आत्मा, इसके सभी राज्यों की एकता का महत्त्व स्पष्ट करता है।

हमारा संविधान भारत के सभी नागरिकों को छः मौलिक अधिकार प्रदान करता है। इनमें सबसे पहला और मुख्य अधिकार है समानता का अधिकार। इस अधिकार के अनुसार हर नागरिक कानून के समक्ष समान है एवं उसका जाति, लिंग, रंग, जन्मस्थान अथवा धर्म के आधार पर भेद प्रतिबंधित है। जाति के अभिशाप पर एक बड़ी चोट करते हुए हमारा संविधान छुआछूत को भी प्रतिबंधित करता है एवं उसे एक दंडनीय अपराध के रूप में देखता है। इसी अधिकार के अंतर्गत लोकतंत्र के सिद्धांत को केंद्र में रखते हुए अकादमिक पदवी के अतिरिक्त किसी भी तरह के खिताब, पदवी या उपाधि का प्रयोग वर्जित है।

दूसरा मौलिक अधिकार है स्वतंत्रता का अधिकार। स्वतंत्र भारत का हर नागरिक स्वतंत्र है। अभिव्यक्ति एवं पढ़ने की स्वतंत्रता के अलावा हर नागरिक के जीने का अधिकार भी इसी के अंतर्गत आता है। जीवन को सर्वोच्च स्थान देते हुए हमारा संविधान किसी भी नागरिक को मरने का अधिकार (यूथेनेशिया) नहीं देता। आत्महत्या को भारतीय ग्रंथों में सबसे बड़ा अपराध माना गया है और हमारा संविधान उसी का अनुसरण करता है। स्वतंत्रता के अधिकार के ही अंतर्गत एक स्वतंत्र और शिक्षित भारत की कल्पना को जीवित करते हुए शिक्षा के अधिकार को स्वतंत्र भारत के हर स्वतंत्र नागरिक का मौलिक अधिकार

 ISSN 2581-4133

माना गया है।

पाश्चात्य दासत्व का बहिष्कार करते हुए हमारा संविधान हर नागरिक को किसी भी प्रकार के शोषण के विरुद्ध एक मौलिक अधिकार प्रदान करता है।

भारतीय मूल्यों में सर्वोपरि हर धर्म के सम्मान से उपजा है हमारा चौथा मौलिक अधिकार जो हर नागरिक को अपने धर्म को मानने एवं उससे जुड़े धार्मिक कार्य करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इसके अलावा विवाह, तलाक और परिवार से संबंधित सभी कानून हमारे संविधान में हर धर्म के लिए उनके धार्मिक नियमों पर आधारित हैं। जैसे कि, हिंदुओं के लिए हिंदू मैरिज एक्ट के तहत विवाह का प्रावधान। भारत में धर्म की अहमियत को समझते हुए संविधान-निर्माताओं ने सभी धर्मों को संयोजित करते हुए हमारे संविधान का निर्माण किया है।

इन सभी मौलिक अधिकारों के अलावा संविधान निर्माण में भारतीय स्रोत की झलक हमारे निर्माताओं के लोकतंत्र को शासन-प्रणाली के रूप में चुनने के निर्णय में परिलक्षित होती है। स्वतंत्रता के पश्चात लोकतंत्र को चुनना, एक ऐसी प्रणाली जिसमें कोई राजा अपनी विरासत के कारण से नहीं बल्कि लोगों के मतों के कारण बनता है। कोई भी व्यक्ति जो अपने आप को राष्ट्र के नेतृत्व के योग्य समझता है तथा निर्वाचन हेतु निर्धारित अर्हताएँ रखता है वो प्रत्याशी के रूप में चुनाव में खड़ा हो सकता है। प्रजातंत्र का सम्मान और सभी वर्गों को साथ लेकर चलने के इस भारतीय भाव का अनुसरण करते हुए हमारे संविधान निर्माताओं ने हमारे राजनीतिक ढाँचे को ऐसा ही एक रूप दिया है।

लोकतंत्र का सबसे छोटा स्वरूप, गावों और कस्बों में होने वाले पंचायत चुनाव भारत की नींव उसके ग्रामीण परिदृश्य को साथ में लेकर चलते हैं। पंचायती राज भारत की सबसे पुरानी राजतंत्र प्रणालियों में से एक है और इसका उल्लेख भारत की

सबसे पुरानी सभ्यताओं के इतिहास में मिलता है। मुगलों और अंग्रेजी-शासन के समय में पंचायतों को नकार दिया गया था। हालांकि, स्वतंत्रता के पश्चात हमारे ग्रामीण क्षेत्रों को हमारी राजनीति का सबसे छोटा और अहम भाग समझते हुए 'ग्राम स्वराज' के विचार के अंतर्गत पंचायती राज को पुनर्जीवित किया गया। आज भी पंचायत भारत के सबसे कमजोर तबकों को इस देश की राजनीति से जोड़ती है और 'बॉटम-टू-टॉप' की राजनीति में एक अहम भूमिका का निर्वहन करती है।

**हमारे संविधान निर्माताओं ने एक ऐसे संविधान का निर्माण किया है जिसे समय की मांग के साथ संशोधनों द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है किन्तु जिसके भारतीय मूल्यों पर आधारित और भारतीय विचारों से प्रेरित मूल सिद्धांतों को हाथ भी नहीं लगाया जा सकता। एक ऐसा संविधान जिसमें पूरे विश्व की झांकी तो है, मगर जो अपनी भारतीयता को गर्व से अपना कर भारत का परचम सम्पूर्ण विश्व में लहराता है।**

वसुधैव कुटुंबकम् अर्थात् पूरा विश्व एक परिवार है के मूल्य को अंगीकार करते हुए विश्व के बहुत से संविधानों के श्रेष्ठतम बिंदुओं को हमारे संविधान में स्थान प्राप्त है। इसका यह अर्थ नहीं है कि उन बिंदुओं की प्रतिलिपि मात्र हमारे संविधान में है, किन्तु इसका अर्थ है कि उन बिंदुओं को लेकर हमारे निर्माताओं ने उन्हें भारत के परिपेक्ष्य के अनुरूप ढाला है। सबसे परस्पर सीखने की प्रवृति को जीवीत रखते हुए हमने हमसे पहले स्वतंत्र हुए कई देशों का आकलन कर अपने संविधान को जन्म दिया है।

हमारे संविधान निर्माताओं ने एक ऐसे संविधान का निर्माण किया है जिसे समय की मांग के साथ संशोधनों द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है किन्तु जिसके भारतीय मूल्यों पर आधारित और भारतीय विचारों से प्रेरित मूल सिद्धांतों को हाथ भी नहीं लगाया जा सकता। एक ऐसा संविधान जिसमें पूरे विश्व की झांकी तो है, मगर जो अपनी भारतीयता को गर्व से अपना कर भारत का परचम सम्पूर्ण विश्व में लहराता है। ऐसा है हमारा संविधान, बिल्कुल भारत जैसा, जिसमें पूरे विश्व का स्वागत तो है मगर जो वैश्वीकरण का चोगा पहनने से इंकार कर अपने हर नागरिक को भारतीय संस्कृति का स्मरण कराता है। ❑

# भारतीय संविधान में भारतीय भाषा का महत्त्व

**स्मिता रावसाहेब देशमुख**
प्राचार्य, मातोश्री विमलाबाई देशमुख महाविद्यालय, अमरावती, महाराष्ट्र

भारतीय संविधान भारतीय संस्कृति की जड़ों में गहराई से निहित है। यह न केवल कानूनों का संग्रह है, बल्कि यह एक ऐसा दस्तावेज है जो विविधता, सहिष्णुता और समानता के सिद्धांतों को समाहित करता है। संविधान के माध्यम से, भारतीय संस्कृति की विविधता और समृद्धि को संरक्षित किया गया है, जो देश के हर नागरिक के लिए एक महत्त्वपूर्ण संदर्भ है। ''हम भारतीय हैं, पहले और अंत में।'' यह उनके जाति और धर्म से परे एकता और राष्ट्रीय पहचान के दृष्टिकोण को दर्शाता है।

भारतीय संविधान में भारतीय संस्कृति के कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं को मान्यता दी गई है। यह संविधान न केवल एक कानूनी दस्तावेज है, बल्कि यह समाज के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों का भी प्रतिबिंब है।

''एक महान व्यक्ति एक प्रतिष्ठित व्यक्ति से इस मायने में अलग है कि वह समाज का सेवक बनने के लिए तैयार होता है।'' यह समाज की सेवा के महत्त्व को उजागर करता है, जो संविधान का एक मूल सिद्धांत है।

संविधान में भाषा केवल एक माध्यम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, संस्कृति और नागरिक अधिकारों की प्रतीक है। यह भारतीय समाज की विविधता को समर्पित और संरक्षित करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। संविधान में भाषा का महत्त्व कई दृष्टिकोणों से समझा जा सकता है –

**1. सांस्कृतिक पहचान** – भाषा किसी भी समुदाय की सांस्कृतिक पहचान का महत्त्वपूर्ण हिस्सा होती है। संविधान में विभिन्न भाषाओं को मान्यता देकर, यह सुनिश्चित किया गया है कि हर समुदाय अपनी भाषा और संस्कृति को संरक्षित रख सके।

**2. संविधानिक अधिकार** – संविधान नागरिकों को अपनी मातृभाषा में बातचीत करने और अपने अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार देता है। यह उनके मौलिक अधिकारों में से एक है।

**3. राजनीतिक प्रतिनिधित्व** – भाषा के माध्यम से नागरिक अपनी समस्याओं और आवश्यकताओं को व्यक्त कर सकते हैं। यह राजनीतिक प्रक्रियाओं में भागीदारी को बढ़ावा देता है और सुनिश्चित करता है कि सभी समुदायों के विचारों को सुना जाए।

**4. शिक्षा और विकास** – मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने से बच्चों का समग्र

 ISSN 2581-4133

विकास होता है। यह उन्हें अपने ज्ञान को बेहतर ढंग से समझने और व्यक्त करने में मदद करता है।

**5. संविधान का कार्यान्वयन** – संविधान में भाषा का स्पष्ट प्रावधान, शासन और न्यायालयों में कार्यवाही के लिए आवश्यक है। यह सुनिश्चित करता है कि सभी नागरिकों को न्याय और सरकारी सेवाएँ उनकी भाषा में मिल सकें।

**6. एकता और अखंडता** – विभिन्न भाषाओं को मान्यता देकर, संविधान राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बढ़ावा देता है। यह विभिन्न भाषाई समुदायों के बीच समझ और सहयोग को बढ़ाता है।

**7. भाषाई विविधता का संरक्षण** – भारत की भाषाई विविधता को संरक्षित करने के लिए संविधान में कई प्रावधान हैं, जो इसे विश्व में अद्वितीय बनाते हैं।

**अनुच्छेद 120 : संसद में उपयोग की जाने वाली भाषा**

भाग XVII में किसी भी चीज के बावजूद, परंतु अनुच्छेद 348 के प्रावधानों के अधीन, संसद की कार्यवाही हिंदी या अंग्रेजी में की जाएगी –

यह शर्त है कि राज्यसभा के अध्यक्ष या लोकसभा के अध्यक्ष, या ऐसा व्यक्ति जो इस तरह कार्य कर रहा हो, आवश्यकतानुसार, किसी भी सदस्य को अनुमति दे सकता है जो हिंदी या अंग्रेजी में अपनी बात सही तरीके से नहीं रख सकता, कि वह सदन में अपनी मातृभाषा में बात करे। जब तक संसद कानून द्वारा अन्यथा प्रावधान नहीं करती, यह अनुच्छेद, इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्षों की अवधि के बाद, इस प्रकार प्रभावी होगा जैसे कि 'या अंग्रेजी में' शब्दों को वहाँ से हटा दिया गया हो।

**अनुच्छेद 210 : विधानमंडल में उपयोग की जाने वाली भाषा**

भाग XVII में किसी भी चीज के बावजूद, परंतु अनुच्छेद 348 के प्रावधानों के अधीन, किसी राज्य के विधानमंडल में कार्यवाही राज्य की आधिकारिक भाषा या भाषाओं या हिंदी या अंग्रेजी में की जाएगी।

यह शर्त है कि विधानसभा के अध्यक्ष या विधान परिषद के अध्यक्ष, या ऐसा व्यक्ति जो इस तरह कार्य कर रहा हो, किसी भी सदस्य को अनुमति दे सकता है जो ऊपरोक्त भाषाओं में से किसी में अपनी बात ठीक से नहीं रख सकता, कि वह सदन में अपनी मातृभाषा में बात करे।

जब तक राज्य का विधानमंडल कानून द्वारा अन्यथा प्रावधान नहीं करता, यह अनुच्छेद, इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्षों की अवधि के बाद, इस प्रकार प्रभावी होगा जैसे कि 'या अंग्रेजी में' शब्दों को वहाँ से हटा दिया गया हो।

यह शर्त है कि हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय और त्रिपुरा राज्यों के विधानमंडलों के संदर्भ में यह धारणा इस प्रकार प्रभावी होगी जैसे कि 'पंद्रह वर्षों' शब्दों के स्थान पर 'पच्चीस वर्षों' शब्दों को प्रतिस्थापित किया गया हो।

यह शर्त और है कि अरुणाचल प्रदेश, गोवा और मिजोरम राज्यों के विधानमंडल के संदर्भ में यह धारणा इस प्रकार प्रभावी होगी जैसे कि 'पंद्रह वर्षों' शब्दों के स्थान पर 'चालीस वर्षों' शब्दों को प्रतिस्थापित किया गया हो।

**संविधान और संस्कृति के बीच संबंध गतिशील बना हुआ है, जो समाज के विकसित होते मूल्यों और आकांक्षाओं को दर्शाता है। सांस्कृतिक अधिकारों की सुरक्षा, समानता को बढ़ावा देने, और समकालीन मुद्दों के प्रति अनुकूलन करके, संविधान सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक संरक्षण के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य कर सकता है। संवैधानिक सिद्धांतों और सांस्कृतिक प्रथाओं के बीच चलने वाला संवाद एक समावेशी और जीवंत समाज के विकास के लिए आवश्यक है।**

**अनुच्छेद 343 : संघ की आधिकारिक भाषा**

संघ की आधिकारिक भाषा हिंदी होगी, जो देवनागरी लिपि में होगी। संघ के आधिकारिक प्रयोजनों के लिए उपयोग की जाने वाली संख्याओं का रूप अंतरराष्ट्रीय भारतीय संख्याओं का रूप होगा।

किसी भी चीज के बावजूद, अनुच्छेद (1) में, इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्षों की अवधि के लिए, अंग्रेजी भाषा संघ के सभी आधिकारिक प्रयोजनों के लिए उपयोग की जाती रहेगी जिनके लिए इसे ऐसे प्रारंभ से पहले उपयोग किया जा रहा था।

यह शर्त है कि राष्ट्रपति इस अवधि के दौरान, आदेश द्वारा, अंग्रेजी भाषा के अलावा हिंदी भाषा के उपयोग की अनुमति दे सकते हैं और संघ के किसी भी आधिकारिक प्रयोजन के लिए अंतरराष्ट्रीय भारतीय संख्याओं के अलावा देवनागरी संख्याओं के रूप के उपयोग की अनुमति दे सकते हैं।

इस अनुच्छेद में किसी भी चीज के बावजूद, संसद कानून द्वारा निर्धारित कर सकती है कि पंद्रह वर्षों की उक्त अवधि के बाद, अंग्रेजी भाषा का उपयोग, या देवनागरी संख्याओं का रूप, उन उद्देश्यों के लिए जो कानून में निर्दिष्ट किए जा सकते हैं।

**अनुच्छेद 344 : आधिकारिक भाषा पर संसद की आयोग और समिति**

राष्ट्रपति, इस संविधान के प्रारंभ से पाँच वर्षों की समाप्ति पर और उसके बाद ऐसे प्रारंभ के दस वर्षों की समाप्ति पर, आदेश द्वारा एक आयोग का गठन करेंगे जिसमें एक अध्यक्ष और अन्य सदस्य होंगे जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करेंगे, जो आठवीं अनुसूची में निर्दिष्ट हैं, और आदेश आयोग द्वारा पालन की जाने वाली प्रक्रिया को

परिभाषित करेगा।

आयोग का कार्य राष्ट्रपति को सिफारिशें करना होगा जैसे कि–

1. संघ के आधिकारिक प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा का प्रगतिशील उपयोग;

2. संघ के सभी या किसी भी आधिकारिक प्रयोजन के लिए अंग्रेजी भाषा के उपयोग पर प्रतिबंध;

3. अनुच्छेद 348 में वर्णित सभी या किसी भी प्रयोजन के लिए उपयोग की जाने वाली भाषा;

4. संघ के किसी एक या अधिक निर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए उपयोग की जाने वाली संख्याओं का रूप;

5. राष्ट्रपति द्वारा आयोग को संदर्भित कोई अन्य विषय जो संघ की आधिकारिक भाषा और संघ तथा राज्य या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच संवाद के लिए उपयोग की जाने वाली भाषा से संबंधित हो।

धारा (2) के अंतर्गत सिफारिशें करते समय आयोग को भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक प्रगति, और सार्वजनिक सेवाओं के संदर्भ में गैर-हिंदी भाषी क्षेत्रों के व्यक्तियों के उचित दावों और हितों का ध्यान रखना होगा।

एक समिति गठित की जाएगी जिसमें तीस सदस्य होंगे, जिनमें बीस सदस्य लोकसभा के और दस सदस्य राज्यसभा के होंगे, जिन्हें लोकसभा के सदस्यों और राज्यसभा के सदस्यों द्वारा अनुपातात्मक प्रतिनिधित्व प्रणाली के तहत एकल परिवर्तनीय मत द्वारा चुना जाएगा।

समिति का कार्य आयोग द्वारा धारा (1) के अंतर्गत गठित सिफारिशों की जाँच करना और राष्ट्रपति को इस पर अपनी राय रिपोर्ट करना होगा।

अनुच्छेद 343 में किसी भी चीज के बावजूद, राष्ट्रपति, धारा (5) में संदर्भित रिपोर्ट पर विचार करने के बाद, उस रिपोर्ट के पूरे या किसी भी भाग के अनुसार निर्देश जारी कर सकते हैं।

**अनुच्छेद 345 : राज्य की आधिकारिक भाषा या भाषाएँ**

अनुच्छेद 346 और 347 के प्रावधानों के अधीन, किसी राज्य का विधानमंडल कानून द्वारा राज्य में उपयोग में लाए जाने वाली किसी एक या एक से अधिक भाषाओं या हिंदी को उस राज्य के सभी या किसी भी आधिकारिक प्रयोजनों के लिए उपयोग की जाने वाली भाषा के रूप में अपनाने का प्रावधान कर सकता है –

यह शर्त है कि, जब तक राज्य का विधानमंडल कानून द्वारा अन्यथा प्रावधान नहीं करता, अंग्रेजी भाषा उन आधिकारिक प्रयोजनों के लिए राज्य में उपयोग की जाती रहेगी जिनके लिए इसे ऐसे संविधान के प्रारंभ से पहले उपयोग किया जा रहा था।

**अनुच्छेद 346 : एक राज्य और दूसरे राज्य या एक राज्य और संघ के बीच संवाद के लिए आधिकारिक भाषाएँ –**

वर्तमान में संघ में आधिकारिक प्रयोजनों के लिए उपयोग की जाने वाली भाषा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच और एक राज्य और संघ के बीच संवाद के लिए आधिकारिक भाषा होगी।

यह शर्त है कि यदि दो या अधिक राज्य सहमत होते हैं कि हिंदी भाषा उन राज्यों के बीच संवाद के लिए आधिकारिक भाषा होनी चाहिए, तो उस भाषा का उपयोग उस संवाद के लिए किया जा सकता है।

**अनुच्छेद 347 : राज्य की जनसंख्या के एक वर्ग द्वारा बोली जाने वाली भाषा से संबंधित विशेष प्रावधान।**

यदि इस संबंध में कोई मांग की जाती है, तो राष्ट्रपति, यदि वह संतुष्ट हैं कि राज्य की जनसंख्या का एक महत्त्वपूर्ण अनुपात उस राज्य द्वारा बोली जाने वाली किसी भी भाषा का उपयोग मान्यता देने की इच्छा रखता है, तो वह निर्देशित कर सकते हैं कि ऐसी भाषा को उस राज्य या उसके किसी भाग में उस प्रयोजन के लिए आधिकारिक रूप से मान्यता दी जाएगी जिसे वह निर्दिष्ट करेंगे।

संविधान और संस्कृति के बीच संबंध गतिशील बना हुआ है, जो समाज के विकसित होते मूल्यों और आकांक्षाओं को दर्शाता है। सांस्कृतिक अधिकारों की सुरक्षा, समानता को बढ़ावा देने, और समकालीन मुद्दों के प्रति अनुकूलन करके, संविधान सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक संरक्षण के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य कर सकता है। संवैधानिक सिद्धांतों और सांस्कृतिक प्रथाओं के बीच चलने वाला संवाद एक समावेशी और जीवंत समाज के विकास के लिए आवश्यक है।

'संविधान केवल एक कागज का टुकड़ा नहीं है; यह एक जीवित दस्तावेज है जिसे समाज के साथ विकसित होना चाहिए।' यह संविधान की गतिशील प्रकृति और सामाजिक प्रगति में इसकी भूमिका को रेखांकित करता है। ❑

 ISSN 2581-4133

# संविधान संशोधनों का इतिहास

**डॉ. धीरज शर्मा**
इतिहास विभागाध्यक्ष,
राजकीय महाविद्यालय
सुमेरपुर, पाली (राजस्थान)

भारत लोकतांत्रिक गणराज्य है जो संविधान सम्मत विधियों, नियमों, विनियमों और अधिनियमों द्वारा अपनी संप्रभु शक्ति को प्राप्त करता है। अपनी इस शक्ति के स्रोत के रूप में संविधान को आधार मानते हैं तथा विधि की वैधानिकता संवैधानिक प्रावधानों के अनुपालन में ही निहित है। ऐसे में मूल रूप से निर्मित संविधान ने संविधान की सर्वोच्चता को आत्मसात किया था जो देश के लोकतंत्र की आधारशिला है, यह कानून के शासन, नागरिकों के अधिकारों की रक्षा और सरकार के कार्यों को संविधान के दायरे में रखने को सुनिश्चित करती है। संविधान एक जीवंत और प्रगतिशील दस्तावेज बना रहे, जो राष्ट्र की बदलती आवश्यकताओं के साथ तालमेल बिठा सके तथा बदलते परिप्रेक्ष्य में समाज की आवश्यकताएँ और आकांक्षाएँ भी बदलती है, जिन्हें संविधान संशोधनों के माध्यम से पूरा किया जा सके। समाज, अर्थव्यवस्था और राजनीति में समय के साथ बदलाव आते रहते हैं। इन बदलावों के अनुसार संविधान को अद्यतन करना होगा ताकि यह समाज की मौजूदा आवश्यकताओं को पूरा कर सके। जब भी नए सामाजिक मुद्दे या अधिकारों की मांग उत्पन्न होती है, तो संविधान संशोधन के जरिए उन्हें समाहित किया जा सकता है, जैसे कि शिक्षा का अधिकार या सूचना के अधिकार को समाहित किया गया है। इसके साथ ही संविधान संशोधनों के माध्यम से संघीय व्यवस्था और राज्यों की स्वायत्तता को भी कायम रखा जा सकता है।

संविधान में संशोधन की शक्ति संसद में निहित है जो भारतीय संविधान के भाग-20 के अनुच्छेद-368 के अनुसार प्राप्त होती है। किसी भी संविधान में परिवर्तन या संशोधन की प्रक्रिया को अपनाया जाना प्रगति का सूचक माना जाता है। भारतीय संविधान में संशोधन की शक्ति संसद में निहित है लेकिन यह शक्ति असीमित नहीं है। इस पर युक्तियुक्त प्रतिबंध भी है और यह प्रतिबंध हमें अनुच्छेद-13(2) में देखने को मिलता है कि राज्य कोई ऐसी विधि नहीं बनायेगा जो संविधान के भाग-3 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों को छीनती है या न्यून करती है। अनुच्छेद-13(2) में परिभाषित विधि शब्द के इतर जो भी मूल अधिकार हैं उसमें संसद संशोधन कर सकती है। संविधान निर्माण के बाद सर्वप्रथम शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ वाद (1951) में प्रथम संविधान संशोधन किया गया जिसके द्वारा भूमि सुधार विधियों को संरक्षित किया गया। साथ ही संविधान में नौवीं अनुसूची तथा अनुच्छेद-31(क) और अनुच्छेद-31(ख) जोड़ा गया। केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य वाद में 24 अप्रैल, 1973 को मुख्य न्यायामूर्ति श्री सीकरी की अध्यक्षता में 13 न्यायाधीशों की पीठ ने 7:6 के बहुमत से संविधान के आधारभूत ढांचे का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया। मिनर्वा मिल्स वाद में सुप्रीम कोर्ट ने संविधान संशोधन की 'सीमित शक्ति' और 'न्यायिक पुनरावलोकन' को संविधान का आधारभूत ढांचा घोषित किया। संविधान संशोधन की वर्तमान स्थिति को देखा जाए तो संसद में मूल अधिकारों सहित संविधान के किसी भी उपबंध में संशोधन कर सकती है किन्तु

न्यायालय द्वारा उसकी समीक्षा की जा सकती है और यदि वह उपबंध संविधान के मूलभूत ढांचे को नष्ट करता है तो न्यायालय उसे अविधिमान्य घोषित कर सकता है। प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम 1951 रमेश थापर बनाम स्टेट आफ मद्रास के मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय से उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने पर विचार किया गया था इसके द्वारा स्वतंत्रता, समानता एवं संपत्ति से संबंधित मूल अधिकार को लागू किए जाने संबंधी कुछ व्यावहारिक कठिनाइयों को दूर करने का प्रयास किया गया तथा वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मूल अधिकार पर इसमें उचित प्रतिबंध की व्यवस्था की गई। 7वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद-230 व 231 में भी संशोधन किया गया तथा इसके द्वारा उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को संघ राज्य क्षेत्रों पर बढ़ा दिया गया और दो से अधिक राज्यों के लिए एक उच्च न्यायालय का उपबंध किया गया। भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित महत्त्वपूर्ण संविधान संशोधन 11वाँ संविधान संशोधन 1961 डॉ. खरे के मामले के पश्चात् पारित किया गया जिसमें अनुच्छेद-71(4) जोड़ा गया तथा इस अनुच्छेद में उपबंधित किया गया कि निर्वाचक मंडल में रिक्तता के आधार पर राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन की वैधता को चुनौती नहीं दी जा सकती।

एक महत्त्वपूर्ण संविधान संशोधन जिन्होंने न्यायाधीशों के कार्यकाल में वृद्धि की, वह है 15वाँ संविधान संशोधन 1963 जिन्होंने अनुच्छेद-217(क)(1) में संशोधन करके उच्च न्यायालय के न्यायधीशों का कार्यकाल 60 वर्ष से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दिया गया जो आज तक चला आ रहा है। 16वें संविधान संशोधन 1963 द्वारा संविधान की तीसरी अनुसूची में परिवर्तन कर शपथ ग्रहण के अन्त में 'भारत की प्रभुता एवं अखंडता को बनाए रखूँगा' शब्द जोड़ा गया। भारत भौतिक संरचना की दृष्टि से विविधताओं से भरा देश है और इसी कारण भारतीय भूभाग में कृषि भूमि के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न नाम सुनने को मिलते हैं तथा राज्य पुनर्गठन से राज्यों के क्षेत्र में आंतरिक रूप से परिवर्तन हुए जिससे भू-उपयोग की शब्दावलियाँ भी प्रभावित हुई तथा इस समस्या के निराकरण के लिए 17वें संविधान संशोधन 1964 द्वारा अनुच्छेद-31(क) और 9वीं अनुसूची में संशोधन किया गया तथा किसी स्थानीय क्षेत्र के संबंध में 'संपदा' पद का वही अर्थ होगा जो उस पद या उसके स्थानीय समतुल्य का उस क्षेत्र में प्रवृत्त भूमि-पट्टों से संबंधित विद्यमान विधि में है। इस संशोधन द्वारा केरल और मद्रास राज्य द्वारा पारित भूमि सुधार अधिनियमों को संरक्षण प्रदान किया गया। भौगोलिक विविधताओं के साथ भारत भाषायी एवं सांस्कृतिक रूप से विविधता लिए हुए है तथा अनेक राज्यों का पुनर्गठन इस आधार पर भी हुआ है जैसे कि 18वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 3 में स्पष्ट किया गया कि 'राज्य' शब्द के अंतर्गत 'संघ राज्य क्षेत्र' भी आते हैं और इसके अनुसार 1960 में पंजाबी भाषी क्षेत्र का पुनर्गठन किया गया और पंजाबी भाषी क्षेत्र पंजाब के रूप में, हिन्दी भाषी क्षेत्र हरियाणा तथा पर्वतीय क्षेत्र हिमाचल प्रदेश और चंडीगढ़ केंद्र शासित क्षेत्र के रूप में गठित किए गए। लोकतांत्रिक व्यवस्था को मूर्तरूप देने के लिए निष्पक्ष चुनाव संपन्न करवाने के लिए संवैधानिक संस्था के रूप में चुनाव आयोग गठित किया हुआ है। 19वें संविधान संशोधन 1966 द्वारा संसद और राज्य विधानमंडलों के सदस्यों के चुनाव संबंधी विवादों को निपटाने के लिए जो न्यायाधिकरण की व्यवस्था थी उनको समाप्त कर दिया गया और यह शक्ति उच्च न्यायालय को दे दी गई। प्रिवीपर्स की व्यवस्था संविधान की प्रस्तावना और भाग-3 में निहित समानता के विचार के विरुद्ध थी। इसके अलावा, 'प्रिवी पर्स' एक नवजात स्वतंत्र राष्ट्र पर एक अतिरिक्त आर्थिक दबाव था, जो गरीबी, भूख और सुरक्षा की चुनौतियों से ग्रस्त था। इसलिए, तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने प्रिवी पर्स को समाप्त करने का मामला उठाया तथा 1971 में भारत के संविधान में 26वें संशोधन द्वारा 'प्रिवी पर्स' को समाप्त कर दिया गया। संशोधन के कारण अनुच्छेद-291 और 362 को हटा दिया गया। प्रिवी पर्स का उन्मूलन आवश्यक था क्योंकि यह भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों के तहत सभी नागरिकों के लिए समान अधिकारों के विचार के विरुद्ध था। 28वें संविधान संशोधन द्वारा भारतीय सिविल सेवा के अधिकारियों को प्राप्त विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया तथा

ISSN 2581-4133

इसके तहत अनुच्छेद-314 को निरसित किया गया और अनुच्छेद- 312A को संविधान में जोड़ा गया। सन् 1973 में भारतीय संसद के लोकप्रिय सदन लोकसभा के सदस्यों की संख्या में वृद्धि के लिए 31वाँ संविधान संशोधन किया गया जिसके तहत लोकसभा सदस्यों की संख्या 525 से बढ़ाकर 545 कर दी गई। वहीं केंद्र शासित प्रदेशों का प्रतिनिधित्व 25 से घटाकर 20 कर दिया गया। एक ओर महत्त्वपूर्ण 38वाँ संविधान संशोधन अनुच्छेद-352 के अधीन आपात स्थिति की घोषणा करने में राष्ट्रपति के समाधान के प्रश्न को अवाद योग्य बनाना है और अनुच्छेद-123 राष्ट्रपति को संसद के दोनों सदनों के सत्र में न होने पर अध्यादेश जारी करने का अधिकार देता है, यदि वह संतुष्ट हो कि ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद हैं, जो तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक बनाती हैं। संविधान द्वारा अनुच्छेद-213 के तहत राज्यपाल को इसी प्रकार की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। इसी प्रकार की शक्तियाँ प्रशासक को अनुच्छेद-239बी के तहत प्रदान की गई हैं, जब किसी केंद्र शासित प्रदेश का विधानमंडल सत्र में न हो।

इस संविधान संशोधन द्वारा राष्ट्रपति, राज्यपाल तथा उपराज्यपालों द्वारा अध्यादेश जारी करने के मामले में उनके समाधान के प्रश्न को न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर कर दिया गया था। 39वाँ संविधान संशोधन 1975 इलाहाबाद उच्च न्यायालय के उस फैसले की प्रतिक्रिया के संदर्भ में लाया गया था जिसमें न्यायालय ने समाजवादी नेता राजनारायणा की याचिका पर तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के लोकसभा में निर्वाचन को अवैधानिक करार दिया था। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और लोकसभा अध्यक्ष से संबंधित निर्वाचन विवादों को न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार से बाहर किया गया। यह तय किया गया कि इनसे संबंधित विवादों का निर्धारण संसद द्वारा सुनिश्चित किये गए प्राधिकरण द्वारा किया जाएगा। इसके साथ ही नौंवी अनुसूची में कुछ केंद्रीय अधिनियमों को जोड़ा गया। 41वाँ संविधान संशोधन ने संविधान के अनुच्छेद-316(2) में संशोधन करके राज्य लोक सेवा आयोगों के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवानिवृत्ति की आयु 60 से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दी। लघु संविधान के नाम से जाना जाने वाला 42वाँ संविधान संशोधन अधिनियम इंदिरा गांधी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा अधिनियमित किया गया था। 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 ने प्रस्तावना में 3 शब्द जोड़े - 'समाजवादी', 'धर्मनिरपेक्ष' और 'अखंडता'। यह अनुच्छेद-51ए के तहत 'घोषणा' को जोड़ने के साथ मौलिक अधिकारों के दायरे का भी विस्तार करता है। 42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 ने संघीय और राज्य संसदीय दोनों शक्तियों को भी बढ़ाया और उन्हें अपने-अपने क्षेत्रों में अधिक अधिकार दिए। इसने शीर्ष न्यायालयों की भूमिका को मजबूत किया, नौकरशाही को बढ़ाकर और 'कैबिनेट सचिवालयों' आदि का पुनर्गठन करके केंद्र सरकार को पुनर्गठित किया। इसके अलावा, इसमें अनुच्छेद-51ए जोड़ा गया जिसके तहत भारतीय नागरिकों के लिए 10 मूल कर्तव्यों का उपबंध किया गया जो वर्तमान में इनकी संख्या 86वें संशोधन द्वारा नि:शुल्क शिक्षा का कर्तव्य जुड़ने के बाद 11 हो गई है। इस संविधान संशोधन के आलोचकों का कहना है कि 42वाँ संशोधन अधिनियम इंदिरा गांधी द्वारा 1975 के पंजाब संकट की पृष्ठभूमि में जल्दबाजी में पारित किया गया था, जब सिख अलगाव आंदोलन अपने चरम पर था। परिणामस्वरूप, इंदिरा गांधी ने पड़ोसी राज्यों के साथ संघर्ष को हल करने के लिए संविधान का उपयोग किया। तब से, राजनेताओं ने संविधान के प्रति अपना दृष्टिकोण बदल दिया और इसमें संशोधन कर रहे हैं जबकि संवैधानिक प्रावधानों और नियमों का पालन करना ही अनिवार्य है। 42वें संविधान संशोधन द्वारा इंदिरा सरकार ने संविधान में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया था जिससे मूल संविधान की संरचना में विकृतियाँ पैदा कर दी और संविधान की सर्वोच्चता की बजाए संसद ही सर्वोच्च लगने लगी ऐसी स्थिति में भारत सरकार

ने आपातकाल से पहले की स्थिति में पुन: स्थापित करने के उद्देश्य से 1978 में 44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया। इसने भारतीय राजनीति को और अधिक लोकतांत्रिक बनाने के उद्देश्य से भारत के संविधान में व्यापक पैमाने पर बदलाव किये। 42वें संविधान संशोधन ने मूल ढांचे के सिद्धांत को दरकिनार कर दिया था जिन्हें 44वें संशोधन द्वारा मजबूती प्रदान की गई और प्रावधान किया गया कि भारतीय संविधान के बुनियादी ढाँचे में कोई भी संशोधन केवल तभी लागू किया जा सकता है जब भारत के लोग उन्हें जनमत संग्रह में बहुमत से मंजूरी देते हैं जिसमें कम से कम 51 प्रतिशत मतदाताओं ने भाग लिया हो। यह संविधान के अनुच्छेद-368 में संशोधन करके सुनिश्चित किया गया है। संविधान संशोधनों की जड़ कहे जाने वाला संपत्ति के अधिकार को अब मौलिक अधिकारों की सूची से हटा दिया गया और अनुच्छेद-300a के तहत इसे विधिक अधिकार का दर्जा दिया गया। 44वें संशोधन अधिनियम 1978 से पहले, युद्ध या बाहरी आक्रमण या आंतरिक अशांति के आधार पर आपातकाल की उद्घोषणा जारी की जा सकती थी जो अस्पष्ट थी और कार्यकारी द्वारा इसका दुरुपयोग किया जा सकता था। इसलिये अधिनियम ने आंतरिक अशांति के स्थान पर 'सशस्त्र विद्रोह' की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया। राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की लिखित अनुशंसा के बाद ही आपातकाल की घोषणा कर सकते हैं तथा एक बार आपातकाल की उद्घोषणा को मंजूरी मिलने के बाद इस पर कोई संसदीय नियंत्रण नहीं था लेकिन अब अस्वीकृति पर विचार के लिये लोकसभा की विशेष बैठक हो सकती है। अनुच्छेद-358 के प्रावधानों के तहत, युद्ध या बाहरी आक्रमण के आधार पर आपातकाल घोषित होने पर अनुच्छेद-19 स्वचालित रूप से निलंबित हो जाएगा लेकिन आपातकाल के दौरान अनुच्छेद-20 और अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन को निलंबित नहीं किया जा सकता है इस संशोधन अधिनियम से पहले, आपातकाल लागू होने पर किसी भी या सभी मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन को निलंबित किया जा सकता था। 44वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद-257 को हटा दिया गया है, जो किसी गंभीर संकट से निपटने के लिये सैन्य बलों या अन्य केंद्रीय बलों को तैनाल करने की केंद्र सरकार की शक्ति से संबंधित था। इन संशोधनों के माध्यम से सरकार ने सकारात्मक सुधारों का प्रयास किया और संविधान सर्वोच्च है के सिद्धांत को पुनर्स्थापित किया। वर्ष 1985 में 52वें संविधान संशोधन के द्वारा लाया गया है इसका उद्देश्य राजनीतिक लाभ और पद के लालच में दल बदल करने वाले जन-प्रतिनिधियों को अयोग्य करार देना है, ताकि संसद की स्थिरता बनी रहे। दल-बदल विरोधी कानून संसदीय प्रणाली में अनुशासन और सुशासन सुनिश्चित करने में अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है, लेकिन इसे परिष्कृत किये जाने की ज़रूरत है, ताकि दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र सबसे बेहतर लोकतंत्र भी साबित हो सके। भारतीय लोकतंत्र की सबसे खूबसूरती संविधान द्वारा प्रदत्त वयस्क मताधिकार के राजनीतिक अधिकार में निहित है मूलत: मताधिकार की न्यूनतम आयु 21 वर्ष थी लेकिन शनै-शनै भारत में युवा आबादी बढ़ने लगी और समय की मांग ने सन् 1989 में 61वें संविधान संशोधन द्वारा 21 से घटाकर 18 करके पूरी कर दी। एक लंबे समय से मांग चली आ रही थी कि दिल्ली को विशेष दर्जा मिले और इस दिशा में केंद्रीय सरकार ने 1991 के 69वें संविधान संशोधन अधिनियम से भारतीय संविधान में अनुच्छेद-239 और 239AB को शामिल करके दिल्ली के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र को विशेष दर्जा दिया गया। 70वें संविधान संशोधन 1992 द्वारा पांडिचेरी के साथ ही दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र की विधानसभा सदस्यों को भी राष्ट्रपति के निर्वाचन मंडल में शामिल कर लिया गया। भारतीय लोकतंत्र की बुनियाद कहे जाने वाले एवं गांधी जी के ग्रामराज्य की संकल्पना को मूर्तरूप देने के लिए तथा स्थानीय स्वशासन को सुनिश्चित करने के लिए केंद्र सरकार द्वारा 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम 1992 एवं 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम 1992 पारित किया गया जिसके तहत पंचायतीराज और स्थानीय नगरीय स्वशासन को संवैधानिक वैधता प्राप्त हुई। 91वें संविधान संशोधन 2003 ने दल-बदल व्यवस्था को और कड़ा कर दिया अब केवल संपूर्ण दल के विलय को ही मान्यता है साथ ही अनुच्छेद-75 और 164 में भी संशोधन कर केंद्र और राज्य मंत्रिपरिषद की सदस्य संख्या को भी लोकसभा तथा राज्य विधानसभा की संख्या के 15 प्रतिशत तक सीमित कर दिया गया किंतु जहाँ सदन की सदस्य संख्या 40 या उससे भी कम हो वहाँ अधिकतम संख्या 12 ही होगी। 97वाँ

**संविधान संशोधनों के माध्यम से सामाजिक संगठनों और राजनीतिक दलों की मांगों को भी स्वीकारा जा सके जिससे समाज का प्रत्येक तबका लोकतांत्रिक व्यवस्था और उनसे संबंधित संस्थाओं में विश्वास बनाए रख सके तथा सामाजिक और राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित हो सके। संविधान संशोधन की प्रक्रिया संविधान के मूलभूत ढांचे के सिद्धांत को समय-समय पर परिपुष्ट करता रहे जिससे संवैधानिक मूल्यों को कायम रखा जा सके। इस प्रकार संविधान संशोधन एक जीवंत और लचीले संविधान के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, जो समाज के बदलते स्वरूप और जरूरतों के साथ सामंजस्य बनाए रख सके।**

संविधान संशोधन अधिनियम 2011 के द्वारा अनुच्छेद 19(1)(ग) में सहकारी समितियाँ शब्द जोड़ा गया तथा संविधान में एक नया भाग-9ख अत: स्थापित किया गया जिसके तहत सहकारी समितियों को संवैधानिक स्तर प्रदान किया गया। संवैधानिक संशोधनों के इतिहास क्रम में देखा जाए तो 99वाँ संविधान संशोधन दशकों से चली आ रही न्यायाधीशों की नियुक्ति संबंधी कोलेजियम प्रणाली को बदलने वाला था जिसका मुख्य उद्देश्य ही उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति और स्थानांतरण की प्रक्रिया को बदलना और इसे अधिक पारदर्शी बनाना था जिसमें न्यायपालिका और कार्यपालिका दोनों की भागीदारी शामिल हो लेकिन 2015 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस संशोधन को असंवैधानिक घोषित कर दिया और NJAC अधिनियम को रद्द कर दिया। अदालत ने इसे न्यायिक स्वतंत्रता के उल्लंघन के रूप में देखा और 'कॉलेजियम सिस्टम' को पुन: बहाल किया, जिसके तहत न्यायाधीशों की नियुक्ति और स्थानांतरण किया जाता रहा है। इस प्रकार, 99वें संविधान संशोधन अधिनियम ने न्यायिक नियुक्ति प्रणाली में सुधार के प्रयास किए, लेकिन इसे न्यायिक स्वतंत्रता के सिद्धांत के खिलाफ समझा गया और निरस्त कर दिया गया। 21वीं सदी के द्वितीय दशक में 100वां संविधान संशोधन (2015) भारत और बांग्लादेश के मध्य भूमि हस्तांतरण से संबंधित है इस संशोधन के द्वारा भारत के बांग्लादेश में स्थित 111 बस्तियाँ बांग्लादेश को और बांग्लादेश के भारत में स्थित 51 बस्तियों को भारत में शामिल किया गया जिसकी नवीनतम सीमाएँ 31 जुलाई 2015 से मान ली गई। अब बात करते हैं आर्थिक सुधारों की तो समय-समय पर सुधार होते आए हैं इसी कड़ी में एनडीए सरकार ने साल 2016 में कर प्रणाली में एक महत्त्वपूर्ण संशोधन 101वाँ किया जो जीएसटी से संबंधित है। इस संविधान संशोधन द्वारा संविधान में तीन नए अनुच्छेद 246ए, 269ए तथा 279ए जोड़े गए और 268ए को निरसित किया गया। समय की मांग ने एसी और एसटी आयोग के बाद 102वें संविधान संशोधन अधिनियम 2018 दवारा राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग को भी संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया तथा अनुच्छेद 342(क) को अत: स्थापित किया गया। एनडीए सरकार ने आर्थिक रूप से पिछड़े सामान्य वर्गों को 103वें संविधान संशोधन अधिनियम 2019 द्वारा सरकारी सेवाओं तथा शिक्षण संस्थानों में 10 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया जिसके अंतर्गत अनुच्छेद 15 व 16 में संशोधन करके खंड 6 अत: स्थापित किया गया। 104वाँ संविधान संशोधन अधिनियम 2021 द्वारा लोकसभा तथा राज्य विधानसभाओं में आंग्ल भारतीय समुदाय के नाम निर्देशन को 25 जनवरी, 2020 से समाप्त कर दिया गया। महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए 106वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2023 पारित किया गया जिसे महिला आरक्षण विधेयक के नाम से भी जाना जाता है, इसका उद्देश्य लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान करना है। संविधान संशोधन वर्तमान में लोकतांत्रिक देशों के लिए अत्यधिक उपादेय हैं क्योंकि वे संविधान को समय के साथ प्रासंगिक और प्रभावी बनाए रखने में मदद करते हैं।

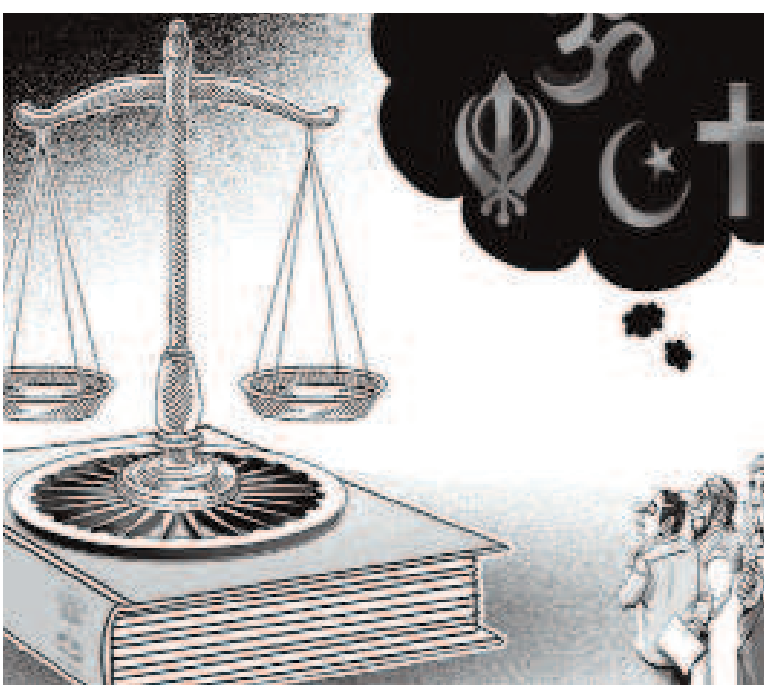

संविधान संशोधनों के माध्यम से सामाजिक संगठनों और राजनीतिक दलों की मांगों को भी स्वीकारा जा सके जिससे समाज का प्रत्येक तबका लोकतांत्रिक व्यवस्था और उनसे संबंधित संस्थाओं में विश्वास बनाए रख सके तथा सामाजिक और राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित हो सके। संविधान संशोधन की प्रक्रिया संविधान के मूलभूत ढांचे के सिद्धांत को समय-समय पर परिपुष्ट करता रहे जिससे संवैधानिक मूल्यों को कायम रखा जा सके। इस प्रकार संविधान संशोधन एक जीवंत और लचीले संविधान के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, जो समाज के बदलते स्वरूप और जरूरतों के साथ सामंजस्य बनाए रख सके। ❑

# संविधान में जीवन-दर्शन के लोकतांत्रिक मूल्य

**डॉ. जसपाल सिंह वरवाल**
बीएड कोऑर्डिनेटर,
दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय,
जम्मू विश्वविद्यालय

लोकतन्त्र या प्रजातन्त्र एक ऐसी शासन प्रणाली है, जिसके अन्तर्गत जनता स्वेच्छा से निर्वाचन में आए हुए किसी भी उम्मीदवार को मत देकर अपना प्रतिनिधि चुन सकती है। लोकतन्त्र, शासन का एक ऐसा रूप है,जिसमें शासकों का चुनाव आम लोग करते हैं, फिर विधायिका बनती है। लोकतन्त्र दो शब्दों से मिलकर बना है, 'लोक+तन्त्र'। लोक का अर्थ है जनता तथा तन्त्र का अर्थ है शासन।

लोकतांत्रिक मूल्यों से तात्पर्य स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय के आदर्शों से है, ये मूल्य अपने वृहद परिप्रेक्ष्य में किसी देश एवं समाज की प्रगति के बेहतर मानक होते हैं जो उसे सर्वसमावेशी, न्यायिक एवं लोकतांत्रिक बनाते हैं। इसी कारण भारतीय संविधान निर्माताओं ने लोकतांत्रिक मूल्यों को जीवन-दर्शन के रूप में स्थापित किया है, जिसकी झलक संविधान की प्रस्तावना में दिखती है और जिसे व्यापक रूप में संविधान के विभिन्न भागों में देखा जा सकता है, जैसे-वंचित एवं पिछड़े समुदायों को समाज की मुख्यधारा में लाने के लिये प्रावधान, अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा के लिये उन्हें प्रदत्त मौलिक अधिकार, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, समय-समय पर चुनाव की व्यवस्था आदि।

लोकतंत्र में संविधान की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि यह एक देश के नागरिकों के अधिकार और कर्तव्यों को परिभाषित करता है, सरकार की संरचना

 ISSN 2581-4133

और कार्यप्रणाली को निर्धारित करता है और सामाजिक न्याय एवं समानता के मूल सिद्धांतों को प्राथमिकता देता है। हमारा संविधान लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों की रक्षा तो करता ही है साथ ही समाज के उच्च आदर्शों और कर्तव्यों का बोध कराता है।

भारत में वर्तमान लोकसभा चुनाव जिस बड़े पैमाने पर आयोजित हुए हैं, यह विश्व के सामने एक मिसाल है। दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है, जहाँ लगभग नब्बे करोड़ से ज्यादा मतदाता हों, दो हजार राजनीतिक दल कड़ी प्रतिस्पर्धा में हों, साठ लाख ईवीएम हों, जिनसे छेड़छाड़ नहीं की जा सकती, साढ़े दस लाख मतदान केंद्र हों, जहाँ अधिकतर शांतिपूर्वक और बिना धांधली के मतदान हो और चुनाव परिणाम की विश्वसनीयता पर हारने वाले उम्मीदवार अथवा दल भी स्वीकृति देते हों। इतने बड़े पैमाने पर आज तक इतिहास में कभी भी लोकतांत्रिक स्वेच्छा का प्रदर्शन नहीं देखा गया। अगर इस कीर्तिमान को कोई तोड़ेगा भी तो उस देश का नाम भारत ही होगा। हम ही अपने आप द्वारा स्थापित ऊँचाइयों से ऊपर जाने की सामर्थ्य रखते हैं। विश्व में लोकतंत्र की साख कायम रखने में भारत सबसे प्रबल दायित्व निभा रहा है। हम आज उस कालखंड में हैं, जहाँ चीन जैसे शक्तिशाली देश में तानाशाही का बोलबाला बढ़ रहा है और अमेरिका जैसा लोकतांत्रिक महारथी राजनीतिक ध्रुवीकरण और आत्मसंदेह में फंसा है।

अगर हम शासन व्यवस्थाओं के वैश्विक संतुलन का जायजा लें तो वह खतरनाक ढंग से यह विश्व तानाशाही के पक्ष में झुक रहा है और फिर भी भारत लोकतंत्र के दीपक को जलाए हुए है। मौजूदा लोकसभा चुनाव इसका परिचायक है। दुनिया भर में लोग देख सकते हैं कि तेज गति से आर्थिक प्रगति करते विशाल देश भारत का लोकतंत्र कितना मजबूत और गहरा है। वे आश्वस्त हो सकते हैं कि सफलता और समृद्धि के लिए चीन की राह पर जाना अनिवार्य नहीं है। इन अकाट्य तथ्यों के बावजूद पश्चिम के उदारवादी पत्रकार और राजनीतिक विश्लेषक भारत में कथित 'लोकतांत्रिक पथभ्रष्टता' और पतन का निरंतर झूठा दुष्प्रचार अभियान चला रहे हैं। हमारा संविधान भारत के सभी नागरिकों को शक्ति प्रदान करता है कि सभी मूल्यों की रक्षा की जा सकती है।

इस प्रकार भारतीय संविधान की विशेषताओं का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि यह लोकतांत्रिक मूल्यों की व्यवस्था का संवैधानिक स्वरूप ही है। आज आवश्यकता इस बात है कि संविधान में निहित लोकतान्त्रिक मूल्यों की सुरक्षा एवं रक्षा करना सभी भारत वासियों का पावन कर्तव्य हो। ❑

**लोकतंत्र में संविधान की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि यह एक देश के नागरिकों के अधिकार और कर्तव्यों को परिभाषित करता है, सरकार की संरचना और कार्यप्रणाली को निर्धारित करता है और सामाजिक न्याय एवं समानता के मूल सिद्धांतों को प्राथमिकता देता है। हमारा संविधान लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों की रक्षा तो करता ही है साथ ही समाज के उच्च आदर्शों और कर्तव्यों का बोध कराता है।**

# भारतीय संविधान में मानवाधिकारों की आध्यात्मिक नींव

**प्रो. प्रकाश चंद्र अग्रवाल**
प्राचार्य,
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान,
भुवनेश्वर, ओड़ीसा

भारतीय संविधान, जिसे विश्व के सबसे व्यापक संविधानों में से एक माना जाता है, केवल एक कानूनी दस्तावेज नहीं है, बल्कि एक गहन नैतिक और आध्यात्मिक घोषणापत्र भी है। इसके मूल में यह विश्वास निहित है कि प्रत्येक व्यक्ति में जन्मजात गरिमा, समानता, स्वतंत्रता और न्याय पाने का अधिकार है। यह सिद्धांत केवल राजनीतिक विचारधाराओं या कानूनी परंपराओं से उत्पन्न नहीं हुए हैं; बल्कि भारत की प्राचीन आध्यात्मिक विरासत में गहराई से निहित हैं, जिसने संविधान की नैतिक नींव को आकार दिया है। महात्मा गांधी के आदर्श, प्राचीन भारतीय दर्शन और विभिन्न विचारधाराओं व परंपराओं से प्रेरित यह संविधान मानवता के उस सामूहिक स्वप्न को प्रतिबिंबित करता है, जो एक न्यायपूर्ण, समावेशी और करुणामयी समाज का निर्माण चाहता है।

भारतीय संविधान का एक प्रमुख सिद्धांत है मानव गरिमा, जो भारतीय दर्शन में आत्मा की अवधारणा से मेल खाता है और यह मान्यता है कि हर जीव में एक शाश्वत तत्त्व विद्यमान है। जीवन की इस पवित्रता को अनुच्छेद 21 के माध्यम से व्यक्त किया गया है, जो प्रत्येक व्यक्ति को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार देता है। यह अधिकार केवल कानूनी प्रत्याभूति तक सीमित नहीं है; यह इस आध्यात्मिक सत्य को भी उजागर करता है कि हर जीवन पवित्र है और उसे आदर और सम्मान मिलना चाहिए। भारतीय संविधान का यह दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि मानव गरिमा भौतिक परिस्थितियों से परे है। प्रत्येक व्यक्ति, चाहे उसकी जाति, वर्ग या लिंग कुछ भी हो, सम्मान का अधिकारी है। जीवन की रक्षा और स्वतंत्रता के अधिकार की प्रत्याभूति न केवल कानूनी सुरक्षा का प्रावधान है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करता है कि समाज हर व्यक्ति में निहित दिव्यता का सम्मान करे।

संविधान की प्रस्तावना, जो न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की घोषणा करती है और राष्ट्र का आध्यात्मिक खाका प्रस्तुत करती है। इन मूल्यों का गहरा संबंध गांधी जी की नीतियों से है, जो अहिंसा, करुणा और सेवा पर आधारित थीं। बंधुत्व का आदर्श विशेष रूप से उबुंटू जैसी अवधारणाओं से मेल खाता है, जो मानवता की आपसी निर्भरता को रेखांकित करती हैं। गांधीजी का सर्वोदय (सबका उत्थान) का सिद्धांत इसी आदर्श को दर्शाता है, जिसमें समाज के सबसे कमजोर वर्गों के उत्थान पर जोर दिया गया है। प्रस्तावना एक ऐसे राष्ट्र की परिकल्पना करती है, जहाँ विविधता में एकता का जश्न मनाया जाए और कोई भी व्यक्ति पीछे न छूटे। यह नैतिक दृष्टि संविधान के राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्वों में अभिव्यक्त होती है, जो राज्य को असमानता को घटाने, गरीबी मिटाने और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने की दिशा में कार्य करने का निर्देश देती है।

भारतीय संदर्भ में न्याय केवल कानूनी निष्पक्षता तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज में संतुलन और सामंजस्य की पुनः स्थापना से भी जुड़ा है। भगवद्गीता का

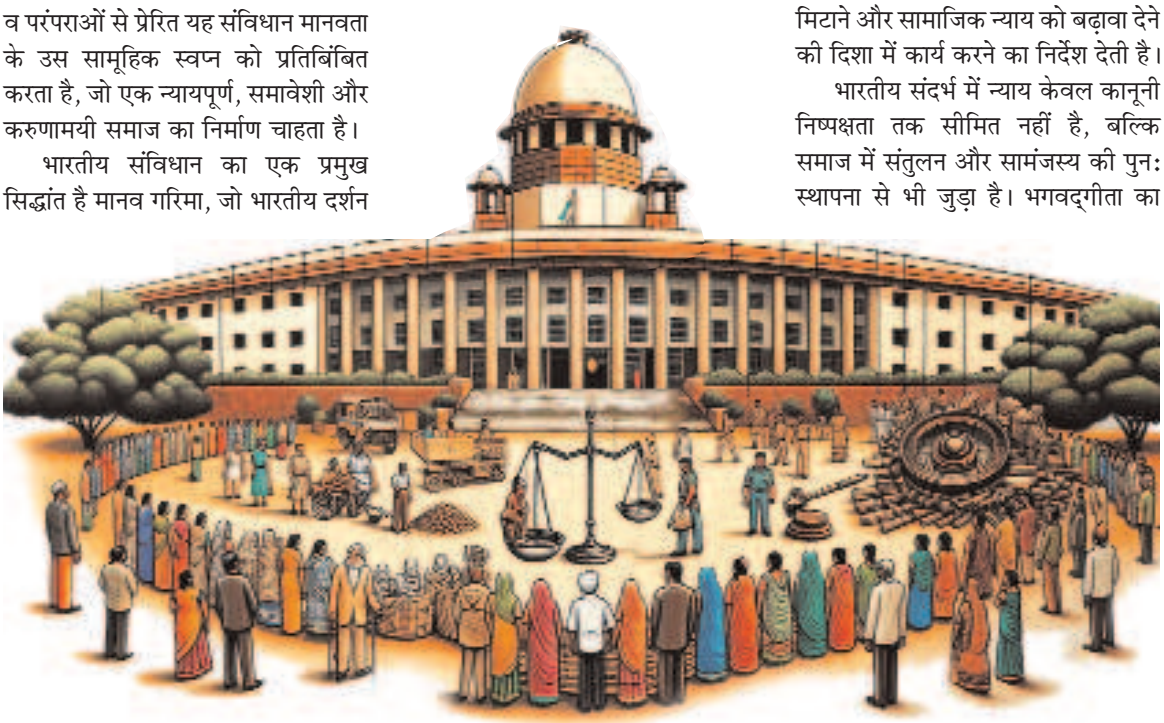

 ISSN 2581-4133

कर्मयोग, विभिन्न धर्मग्रथों की निष्पक्षता , और करुणा आदि सभी न्याय को एक नैतिक जिम्मेदारी के रूप में देखते हैं। संविधान में न्याय की यह अवधारणा केवल राजनीतिक न्याय तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक और आर्थिक न्याय पर भी बल देती है। संविधान यह स्वीकार करता है कि सही अर्थ में न्याय तभी संभव है जब जातिगत भेदभाव जैसी ऐतिहासिक असमानताओं का समाधान किया जाए। अनुच्छेद 15 और 16 के माध्यम से संविधान भेदभाव को समाप्त करने और समान अवसर प्रदान करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

समानता भी भारतीय संविधान का एक महत्त्वपूर्ण आधार है, जो उन आध्यात्मिक परंपराओं में निहित है, और वह सभी प्राणियों के एकल अस्तित्व (oneness) पर बल देती हैं। हिंदू धर्म सिखाता है कि हर व्यक्ति में एक ही दिव्य तत्त्व है, जबकि सिख धर्म जन्म और स्थिति के आधार पर भेदभाव को खारिज करता है। इन मूल्यों का प्रतिबिंब संविधान में अनुच्छेद 17 के माध्यम से अस्पृश्यता उन्मूलन और कानून के समक्ष समानता में दिखाई देता है। सभी को समान दृष्टि से देखने का आदर्श समभाव, उन कानूनी प्रावधानों में परिलक्षित होता है, जिनका उद्देश्य जाति और वर्ण व्यवस्था को समाप्त करना है।

स्वतंत्रता का अधिकार, जो अनुच्छेद 19 से 22 में निहित है, कानूनी और आध्यात्मिक दोनों दृष्टिकोणों को प्रतिबिंबित करते हैं। कानूनी रूप से, ये प्रावधान नागरिकों को दमन और अभिवेचन से सुरक्षा प्रदान करते हैं और उन्हें स्वतंत्र रूप से विचार व्यक्त करने, एकत्र होने और धर्म का पालन करने का अधिकार देते हैं। आध्यात्मिक रूप से यह अधिकार आत्म-मुक्ति और आंतरिक शांति की भारतीय खोज से मेल खाता है। भारतीय संतों ने यह सिखाया है कि सच्ची स्वतंत्रता आत्म-साक्षात्कार में निहित है। संविधान के ये प्रावधान नागरिकों की व्यक्तिगत और आध्यात्मिक यात्रा का सम्मान करते हैं और उनके विचारों और आस्थाओं की स्वतंत्रता को संरक्षित करते हैं।

**भारतीय संविधान कानून और आध्यात्मिकता के गहन सामंजस्य का उदाहरण है। इसके सिद्धांत न केवल आधुनिक लोकतंत्र की आकांक्षाओं को प्रकट करते हैं, बल्कि भारत की शाश्वत आध्यात्मिक परंपराओं को भी उजागर करते हैं। गरिमा, न्याय, समानता और करुणा पर आधारित यह संविधान व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामूहिक जिम्मेदारी दोनों का सम्मान करता है। यह हमें याद दिलाता है कि एक न्यायपूर्ण समाज का निर्माण केवल कानूनी कार्य नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक यात्रा भी है, जिसमें हमें विभाजनों से ऊपर उठकर हर व्यक्ति में निहित दिव्यता को पहचानना है। भारतीय संविधान कानून का मार्गदर्शक ही नहीं, बल्कि मानवता का नैतिक पथ-प्रदर्शक भी है, जो राष्ट्र को शांति, सामंजस्य और न्याय की दिशा में प्रेरित करता है।**

भारत की आध्यात्मिक परंपराओं का एक प्रमुख सिद्धांत है करुणा जो, संविधान में समाज के सबसे कमजोर वर्गों के प्रति झलकती है। भारत की विभिन्न परंपराएँ यह सिखाती हैं कि समाज के गरीबों, असहायों और वंचितों की सेवा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। गांधी जी के न्यासिता सिद्धांत में यह सुझाव दिया गया है कि संपन्न वर्गों को समाज के संसाधनों का अभिरक्षक माना जाना चाहिए। यह सिद्धांत संविधान में राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्वों के माध्यम से दिखाई देता है, जो राज्य को सभी नागरिकों के लिए गरिमामय जीवन सुनिश्चित करने और असमानता घटाने का निर्देश देते हैं।

संविधान पर्यावरण संरक्षण के महत्त्व को भी स्वीकार करता है, जो भारतीय आध्यात्मिक परंपराओं में गहराई से निहित है। हिंदू, बौद्ध और जैन धर्म यह सिखाते हैं कि प्रकृति केवल संसाधन नहीं है, बल्कि एक पवित्र इकाई है। यह भावना अनुच्छेद 48ए में दिखाई देती है, जो राज्य को पर्यावरण, वन और वन्य जीवन की रक्षा का निर्देश देता है। यह आध्यात्मिक समझ हमें याद दिलाती है कि मानवता और पृथ्वी का स्वास्थ्य आपस में गहराई से जुड़ा हुआ है और उनका सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व आवश्यक है।

हालाँकि भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्ष है, यह उन मूल्यों को प्रतिबिंबित करता है, जो धार्मिक सीमाओं से परे और मानवता की सार्वभौमिक आकांक्षाओं को दर्शाते हैं। न्याय, समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व केवल कानूनी सिद्धांत नहीं हैं– ये नैतिक आदर्श हैं, जो भारत की प्राचीन आध्यात्मिक परंपराओं में निहित हैं। यह संविधान करुणा और समावेशन पर आधारित एक शासन व्यवस्था की परिकल्पना करता है, जो प्रत्येक व्यक्ति के संपूर्ण विकास को बढ़ावा देती है।

निष्कर्ष में, भारतीय संविधान कानून और आध्यात्मिकता के गहन सामंजस्य का उदाहरण है। इसके सिद्धांत न केवल आधुनिक लोकतंत्र की आकांक्षाओं को प्रकट करते हैं, बल्कि भारत की शाश्वत आध्यात्मिक परंपराओं को भी उजागर करते हैं। गरिमा, न्याय, समानता और करुणा पर आधारित यह संविधान व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामूहिक जिम्मेदारी दोनों का सम्मान करता है। यह हमें याद दिलाता है कि एक न्यायपूर्ण समाज का निर्माण केवल कानूनी कार्य नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक यात्रा भी है, जिसमें हमें विभाजनों से ऊपर उठकर हर व्यक्ति में निहित दिव्यता को पहचानना है। भारतीय संविधान कानून का मार्गदर्शक ही नहीं, बल्कि मानवता का नैतिक पथ-प्रदर्शक भी है, जो राष्ट्र को शांति, सामंजस्य और न्याय की दिशा में प्रेरित करता है। ❑

वर्तमान राजनीतिक भावना को भारत की हजारों वर्ष पुरानी संस्कृति के साथ जोड़कर न केवल भौगोलिक और राजनीतिक रूप से बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से राष्ट्रवाद की भावना को संगठित करना है। राष्ट्र के उत्थान का जो भाव संविधान में निरूपित किया गया है इसे अनेक मत मतांतरों के बावजूद भी बनाये रखना अति आवश्यक है। किसी राष्ट्र की सुदृढ़ता का आधार वहाँ की सांस्कृतिक विविधता में ही देखा जा सकता है। भारत में संविधान के इसी आदर्शवादी एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा विकसित भारत 2047 की संकल्पना प्रस्तुत की गई है।

# भारतीय संविधान में सांस्कृतिक मूल्य

**डॉ. दीपक कुमार अवस्थी**

सहायक प्रोफेसर
परिष्कार ग्लोबल एक्सीलेंस कॉलेज मानसरोवर,
जयपुर, राजस्थान

भारतीय गणतंत्रात्मक लोकतंत्र के 75 वर्ष की पूर्णता ये दर्शाती है कि भारत एक समृद्ध राष्ट्र के रूप में वसुधैव कुटुम्बकम् के मूल्यों के साथ लोकतंत्र और गणतंत्र के विविध रूपों का अमृत महोत्सव मना रहा है। इन 75 वर्षों में भारतीय शासन व्यवस्था और संविधान में सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक के साथ-साथ सैन्य एवं कूटनीतिक क्षेत्रों में अनेक परिवर्तनों के उपरान्त भी हमारा संविधान अक्षुण्य एवं शाश्वत बना हुआ है। संविधान देश की शासन व्यवस्था का मूल आधार होता है। आधुनिक विश्व व्यवस्था में प्राय: देशों के लिखित संविधान उनकी सभ्यता संस्कृति के प्रभाव को परिलक्षित करते हैं।

भारत का संविधान भी भारत के सांस्कृतिक मूल्यों के साथ-साथ आधुनिक विश्व व्यवस्था के प्रभावों के समन्वय के आधार पर भारतीयों द्वारा गठित संविधान सभा ने निर्मित किया है। संविधान निर्माताओं पर भारतीय दर्शन एवं संस्कृति का प्रभाव स्पष्टत: दिखाई देता है। इसे पश्चिमी सिद्धान्तकारों की अस्पष्ट व्याख्याओं के बजाय भारतीय मूल्यों के पैमाने से देखें तो यह समझ में आयेगा कि इसमें वर्षों की बौद्धिक परतंत्रता और दासता को मिटाकर सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय की सनातन व्यवस्था को राष्ट्र के कल्याण का आधार बनाया गया है। भारतीय संविधान निर्माण में जिन मूल्यों को अपनाया गया उनकी पुन: भारतीयता के आधार पर व्याख्या जरूरी है।

संविधान में वर्णित विशेषताओं को समझने का आधार भारत के धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की विविधता है। संविधान सभा के सदस्य प्रसिद्ध वकील अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर ने कहा था कि प्रस्तावना सहित संविधान के सभी भागों में आध्यात्मिक मूल्यों को समावेशित किया गया है। भारत के संविधान को यद्यपि एक सभा द्वारा निर्मित किया गया लेकिन गहराई से देखा जाए तो इसका क्रमिक विकास लंबे समय का परिणाम है। इसकी पृष्ठभूमि में सदियों पुराना इतिहास, सभ्यता संस्कृति की अटूट परम्पराएँ रही हैं। वेद, पुराण, उपनिषद, महाभारत, स्मृति, रामायण, बौद्ध, जैन साहित्य, कौटिल्य, मनु, शुक्र के ग्रंथों में भारतीय मूल्यों के महत्वपूर्ण आधारों को निष्कर्ष रूप में संविधान में समाहित किया गया। ये बात ठीक है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने विश्व के लगभग 60 देशों के संविधानों का अध्ययन किया, यद्यपि उनमें भी ऐसा कुछ नया नहीं था जो हमारे धार्मिक ग्रंथों में पहले से नहीं हो। भारतीय संविधान निर्माताओं ने भारतीय मूल्यों के संकेतों को अपना कर ही इसे शाश्वत और जीवंत आकार प्रदान किया, लेकिन यूरोपीय, वामपंथी और इस्लामिक विचारकों ने इसकी शाब्दिक व्याख्या में संदेह पैदा करने का निरन्तर प्रयास किया ताकि सामाजिक फूट का लाभ उठा कर अपने स्वार्थों की सिद्धी की जा सके। इन्होंने सदैव भारतीय मूल्यों को पश्चिम के चश्मे से देखा । अत: इनको पुन: व्याख्यायित करने की महती आवश्यकता है। ऐसा माना जाता है कि ब्रिटिश शासन द्वारा पहली बार भारत को

 ISSN 2581-4133

एकता के सूत्र में राष्ट्र के रूप में बांधने का प्रयास किया जिससे संघीय व्यवस्था का निर्माण हो पाया। ये विचारधारा वस्तुत: उचित प्रतीत नहीं होती है। भारत की एकता की चेतना उतनी ही पुरानी है जितना विश्व का इतिहास। हमारे प्राचीन मानस ग्रंथ ऋग्वेद में भारत की एकता का सूत्र स्पष्टत: प्रस्फुटित हुआ है। इसमें अनेक स्थानों पर संघ सभा तथा समितियों का उल्लेख ये दर्शाता है कि संघ के शाश्वत मूल्यों का आधार प्राचीन है।

लोकतंत्र की अवधारणा भी भारत के लिए कोई नयी बात नहीं थी। इसके लिए महाभारत में गणराज्य की सुदीर्घ परम्परा का अनुसरण किया गया। गणराज्य का प्रयोग राज्य के अर्थ में प्रयुक्त किया गया जिसमें शासन जनपद, सभा एवं सभाओं और समितियों की विशद प्रक्रियाओं द्वारा संचालित किया जाता था। संविधान निर्माताओं के चिंतन को मूल्यांकित किया जाये तो आधुनिक गणराज्य का आधार कहीं न कहीं भारत की प्राचीन संस्कृति का अंग रहा है। ये बात अलग है कि उस समय राजतंत्र के अन्तर्गत ये छोटे भू-भाग के लिए प्रयुक्त किया जाता था। मुगलकालीन व्यवस्था से पूर्व भारत में राजतंत्र का आधार कभी भी निरंकुश नहीं रहा। आज के संविधान में लोक कल्याण की अवधारणा इसी बात का आधार है प्राचीनकाल में राजा की शक्तियों पर सभासद एवं अन्य प्रभावशाली नियंत्रणकर्ताओं का अंकुश होता था।

वर्तमान संविधान में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका की शक्तियों का बंटवारा इसी का आधार माना जा सकता है। भारतीय संसद का प्रेरणा वाक्य 'धर्मचक्र प्रवर्तनाय' तथा भारत की न्यायपालिका का प्रेरणा महावाक्य 'धर्मो रक्षति रक्षित:' स्वीकार किया गया है।

भारत 26 जनवरी 1950 को सम्प्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य बना इससे लगभग 3 वर्ष 6 माह पूर्व मार्च 1946 में तत्कालीन लार्ड एटली सरकार ने भारत में चल रहे सांविधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए कैबिनेट मिशन भारत भेजा। आयोग की सिफारिशें यद्यपि सैद्धांतिक रूप से लागू की गई लेकिन ये बात व्यवहारिक रूप से उचित है कि दूसरे विश्व युद्ध के उपरान्त भारत की सांविधानिक प्रक्रिया को अधिक समय तक रोकना ब्रिटिश व्यवस्थाकारों के लिए संभव नहीं था। संविधान निर्माण हेतु जिस सभा का गठन किया उसमें भारतीय सभ्यता संस्कृति की गंगा-जमुना तहजीब का अनूठा समन्वय रखा गया विरोधी विचारों को भी संयमपूर्ण तरीके से सहिष्णुता के आधार पर यथोचित स्थान सभा की चर्चाओं में प्रदान किया गया। संविधान सभा द्वारा लगभग 20 से अधिक समितियों का गठन कर संविधान निर्माण का कार्य पूरा किया जिसमें सभी मतमतांतरों के मध्य सहमति समायोजन के द्वारा परिवर्तन के साथ चयन के सिद्धांत की अनुपालना सुनिश्चित की गई ।

संविधान सभा द्वारा गहन विचार-विमर्श के आधार पर संविधान में 22 भागों को 395 अनुच्छेदों एवं 8 अनुसूचियों के माध्यम से समायोजित किया गया। प्रत्येक भाग को सांकेतिक चित्रों से सजाया गया है जिसमें भारतीय संस्कृति के विविध रंगों की विविधता का अनूठा मिलन निरूपित है लेकिन ये मूल स्वरूप आज भारतीय पाठ्यक्रमों की पुस्तकों में पूर्णत: उपलब्ध नहीं है।

संविधान में नागरिकता, मूल अधिकार, नीति निर्देशक तत्त्व संघ - राज्यों की सरकारों, स्थानीय सरकार, संघ-राज्य संबंधों, वंचित वर्गों का उत्थान, भाषा, आपातकाल, संविधान संशोधन सहित संक्रमणकालीन व्यवस्था को नंदलाल बोस एवं कृपाल सिंह शेखावत जैसे चित्रकारों ने आकार प्रदान किया है।

नागरिकता के भाग में वैदिक गुरुकुल, मूल अधिकारों में प्रभु श्रीराम माता जानकी तथा लक्ष्मण जी का आदर्श चित्र के साथ साथ श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता का उपदेश, आकाश में उड़ते हुए हनुमानजी, भगवान बुद्ध, महावीर स्वामी, भगवान नटराज की नृत्य करती मुद्रा, छत्रपति शिवाजी महाराज, रानी लक्ष्मी बाई, महात्मा गांधी एवं सुभाष चन्द्र बोस को स्थान प्रदान किया गया है। इन सबके पीछे एक ही उद्देश्य हमारे संविधान निर्माताओं का रहा है कि वर्तमान राजनीतिक भावना को भारत की हजारों वर्ष पुरानी संस्कृति के साथ जोड़कर न केवल भौगोलिक और राजनीतिक रूप से बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से राष्ट्रवाद की भावना को संगठित करना है। राष्ट्र के उत्थान का जो भाव संविधान में निरूपित किया गया है इसे अनेक मत मतांतरों के बावजूद भी बनाये रखना अति आवश्यक है। किसी राष्ट्र की सुदृढ़ता का आधार वहाँ की सांस्कृतिक विविधता में ही देखा जा सकता है। भारत में संविधान के इसी आदर्शवादी एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा विकसित भारत 2047 की संकल्पना प्रस्तुत की गई है।

समय-समय पर संशोधनों के द्वारा जो शब्दावली संविधान में जोड़ी गई है को संविधान सभा के सदस्यों द्वारा उसी समय जोड़ने की मांग की। विशेषत: प्रस्तावना में समाजवादी एवं धर्मनिरपेक्षता जैसे शब्दों को संविधान सभा के सदस्यों द्वारा उसी समय जोड़ने की मांग की गई। प्रोफेसर के. टी. शाह ने समाजवादी शब्द को जोड़ने का प्रस्ताव रखा। बृजेश्वर प्रसाद द्वारा धर्म निरपेक्ष शब्द जोड़ने की वकालत की गई, लेकिन परिस्थितिजन्य आधारों को ध्यान में रखते हुए इसे उस समय नहीं माना गया। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा समय-समय पर इन शब्दों की व्याख्या की जाती रही है इस संदर्भ में न्यायालय द्वारा पश्चिमी विचारधारा के बजाय भारतीय विचारधारा को आधार बनाकर देखा जाना जरूरी है।

अंत में निष्कर्षात्मक आधार पर ये कहा जा सकता है कि विकसित समाज और राष्ट्र की जो संकल्पना हमारे नीति निर्माताओं द्वारा प्रस्तुत की गई है इसे संकुचित भावना या अलगाववादी या स्वार्थवादी वोट बैंक की राजनीति के बजाय विस्तृत आधार पर समझने की जरूरत है। ❑

# अद्भुत संतुलन का उदाहरण है संविधान

**डॉ. अंजनी कुमार झा**
विभागाध्यक्ष, मीडिया विभाग,
महात्मा गाँधी केंद्रीय
विश्वविद्यालय, बिहार

प्राय: हमारे संविधान में मूल अधिकारों की जो अनूठी घोषणा है वह संविधान की सर्वोच्चता और विधानमंडल की प्रभुता के बीच संतुलन का उदाहरण है। संविधान में अधिकार विलेख को भी समाविष्ट किया गया है। मूल अधिकारों की लिखित प्रत्याभूति इस समाज और राज्य के प्रति व्यष्टिपरक दृष्टिकोण को जन्म देती है। ऐसा दृष्टिकोण सामान्य जन-कल्याण के लिए अनिष्टकारक साबित हो सकता है। संविधान में प्रत्येक मूल अधिकारों को संविधान के निबंधनों के अधीन विधायी नियंत्रण में रखा गया है। उसे प्रत्येक मामले में न्यायिक संरक्षण प्राप्त होने की आशा में लटकाया नहीं रखा गया है। यह न केवल राजनैतिक या विधिक समानता सुनिश्चित करता है बल्कि सामाजिक समानता भी। प्राय: दी जाने वाली प्रत्याभूति के अलावा कि राज्य नागरिकों के बीच केवल धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर राज्य द्वारा नियुक्ति या अन्य नियोजन की दशा में विभेद नहीं करेगा, संविधान में यह उपबंध भी सम्मिलित है कि अस्पृश्यता का सभी रूप में प्रतिषेध होगा। यह भी अभिकथित किया गया है कि किसी भी नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर किसी सामाजिक सुविधा या विशेषाधिकार के उपभोग से वंचित नहीं किया जायेगा।

निर्देशक तत्त्व न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है किन्तु भाग तीन में सम्मिलित मूल अधिकारों को ऐसे व्यक्ति की प्रेरणा पर प्रवर्तित किया जा सकता है जिसके मूल अधिकार का राज्य अर्थात

हमारे संविधान में मूल अधिकारों की जो अनूठी घोषणा है, वह संविधान को सर्वोच्चता और विधान मंडल की प्रभुता के बीच संतुलन का उदहारण है। संविधान में प्रत्येक मूल अधिकार को इसके निबंधनों के अधीन विधायी नियंत्रण में रखा गया है। परिसंघीय राज्य का जन्म संविधान में होता है वैसे ही जैसे कि निगम की उत्पत्ति उसके सृजनकर्ता अधिनियम से होती है। प्रत्येक शक्ति-कार्यपालिका, विधायिका या न्यायिक, चाहे वह परिसंघ की हो या संघटक राज्यों की-संविधान के अधीन होती है और संविधान द्वारा नियंत्रित होती है। संविधान देश की सर्वोच्च विधि है और संघ और राज्य सरकार और उनके विभिन्न अंग संविधान से ही प्राधिकार प्राप्त करते हैं। राज्य संघ से विलग नहीं हो सकते।

 ISSN 2581-4133

कार्यपालिका या विधायिका के किसी कार्य द्वारा, उल्लंघन हुआ है और इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उपचार अर्थात् बंदी प्रत्यक्षीकरण, प्रतिषेध, उत्प्रेषण और अधिकार परीक्षण की रिटें संविधान द्वारा प्रत्याभूत की गई है। मूल अधिकारों के विरुद्ध विधि की या कार्यपालिका के आदेश को उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा शून्य घोषित किया जा सकता है। इन उपबंधों से गलत आशंका के फलस्वरूप कुछ आलोचकों ने देश के संविधान को वकीलों के लिए वरदान कहा है। सर जैनिग्स के मत में इसका कारण यह है कि संविधान सभा में अधिवक्ता-राजनीतिज्ञों की प्रमुखता थी। उन्होंने व्यक्तियों के अधिकार और परमाधिकार रिटों को संहिताबद्ध करने का विचार किया। सर आइवर के शब्दों में ''इंग्लैंड का कोई भी अधिवक्ता संविधान में परमादेश रिटों को रखने का विचार नहीं करेगा, किन्तु संविधान सभा ने ऐसा किया।'' संविधान के रचयिताओं ने यह कोशिश की कि सभी ज्ञात संविधानों के कार्यकरण से प्राप्त संचित अनुभवों को इसमें समाहित कर लिया जाए और उन संविधानों के प्रकाश में जिन दोषों और कमियों का पूर्वाभास हो सकता है, उन्हें दूर किया जाए। मूल अधिकारों के अध्याय की रचना अमेरिकी संविधान के आधार पर की, जबकि ब्रिटेन से संसदीय शासन की प्रणाली, आयरलैंड के संविधान से राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों का विचार ग्रहण किया और जर्मनी के संविधान और भारत शासन अधिनियम, 1935 के प्रकाश में आपात से सम्बंधित व्यापक उपबंध जोड़ दिए।

भारतीय संविधान के रचयिता शासन के मूल सिद्धांतों को अधिनियमित करने से संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने प्रशासनिक ब्योरे की बातों के लिए भी उपबंध करने के लिए भारत शासन अधिनियम, 1935 को अंशत: अपना लिया। इसका कारण यह था कि लोग उक्त अधिनियम के ब्योरेवार उपबंधों के आदी थे। संविधान निर्माताओं को यह भी भय था कि देश की वर्तमान स्थिति में यदि प्रशासन के रूप को स्पष्ट नहीं किया गया तो लोग संविधान में उलट-पलट कर देंगे। डॉ. आंबेडकर ने ठीक ही कहा था - प्रशासन के रूप में परिवर्तित किये बिना संविधान का दुरुपयोग करना बिलकुल संभव है। संविधान में न्यायपालिका, सेवाएँ, लोक सेवा आयोग, निर्वाचन आदि के बारे में विस्तार से बताये गये हैं। इस सर्वसमावेशिता के आदर्श के कारण ही संविधान में संघ और राज्य के बीच शक्तियों के विभाजन के उपबंध बहुत अधिक हैं। एक विशेष लक्षण यह भी है कि वह लिखित परिसंघ संविधान को लचीलापन प्रदान करता है।

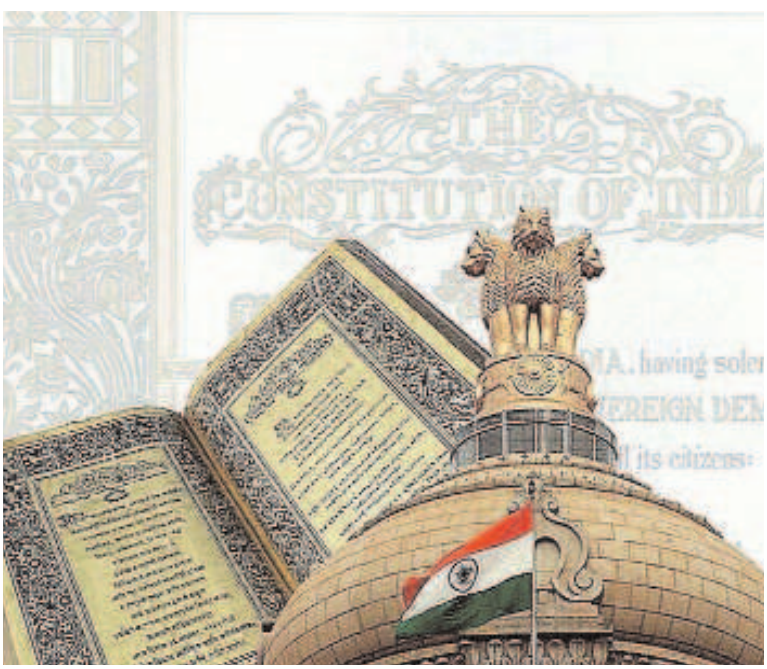


हमारे संविधान में मूल अधिकारों की जो अनूठी घोषणा है, वह संविधान को सर्वोच्चता और विधान मंडल की प्रभुता के बीच संतुलन का उदहारण है। संविधान में प्रत्येक मूल अधिकार को इसके निबंधनों के अधीन विधायी नियंत्रण में रखा गया है। परिसंघीय राज्य का जन्म संविधान में होता है वैसे ही जैसे कि निगम की उत्पत्ति उसके सृजनकर्ता अधिनियम से होती है। प्रत्येक शक्ति-कार्यपालिका, विधायिका या न्यायिक, चाहे वह परिसंघ की हो या संघटक राज्यों की-संविधान के अधीन होती है और संविधान द्वारा नियंत्रित होती है। संविधान देश की सर्वोच्च विधि है और संघ और राज्य सरकार और उनके विभिन्न अंग संविधान से ही प्राधिकार प्राप्त करते हैं। राज्य संघ से विलग नहीं हो सकते। संघ और राज्य सरकारों के बीच विधायी और प्रशासनिक शक्तियों का विभाजन किया गया है। देश का संविधान संघ को इस बात के लिए सशक्त करता है कि वह अपने कार्यपालिका कृत्य किसी राज्य को उसकी सम्मति से सौंप दे। राज्य अपने कार्यपालिका कृत्य संघ को सौंप सकते हैं। इसी प्रकार सुचारू रूप से सहकारी व्यवस्था करने के मार्ग में किसी सरकार द्वारा अपनी प्रभुता के समर्पण का प्रश्न नहीं उठता। ❑

# संविधान में शिक्षा और शिक्षक

**डॉ. अलोक कुमार गौरव**

सहायक प्राध्यापक, लोक प्रशासन विभाग, कर्णाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय, कलबुर्गी, कर्णाटक


जैसा कि इसके कई प्रावधानों में कहा गया है भारतीय संविधान देश की विशाल सांस्कृतिक विरासत और परंपराओं को बचाने और बढ़ावा देने पर बहुत जोर देता है। शिक्षक सांस्कृतिक संरक्षण और विरासत संवर्धन की सरकारी दृष्टि को साकार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस मामले में शिक्षकों की भूमिका न केवल निर्देशात्मक है, बल्कि परिवर्तनकारी भी है। वे देश के उपनिवेशवाद को दूर करने और सभ्यतागत लोकाचार को पुनर्जीवित करने के व्यापक लक्ष्यों में सहायक हैं। यह लेख भारत की विरासत और संस्कृति को बढ़ावा देने में शिक्षकों की संवैधानिक नींव और शैक्षणिक जिम्मेदारियों का विश्लेषण करता है।

भारत की सांस्कृतिक और सभ्यतागत विरासत की सुरक्षा, संरक्षण और प्रचार को बढ़ावा देने के लिए भारतीय संविधान में कई प्रावधान हैं। ये संविधानिक अधिनियम शैक्षिक प्रणाली को सांस्कृतिक शिक्षा को अपनाने और एकीकृत करने का आधार बनाते हैं।

**भारतीय भाषाओं, परंपराओं और ज्ञान प्रणालियों को हाशिये पर डालने वाली मैकालेवादी शिक्षा व्यवस्था आज भी लागू है। शिक्षा को उपनिवेश मुक्त करने का अर्थ है दर्शन, विज्ञान, गणित और नैतिकता में भारत की प्राचीन ज्ञान परंपराओं, जैसे न्याय, वैदिक गणित, आयुर्वेद और संस्कृत साहित्य को पाठ्यक्रम में शामिल करना, रचनात्मकता, आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देना और समावेशिता को बढ़ावा देना शामिल है।**

मौलिक कर्तव्यों का अनुच्छेद 51ए (एफ) – यह कहता है कि भारत की समृद्ध संस्कृति की विरासत को महत्व देना और उसका संरक्षण करना हर नागरिक की जिम्मेदारी है। शिक्षक, शिक्षक के रूप में, अपने विद्यार्थियों को जिम्मेदारी की भावना देने के लिए विशेष रूप से तैनात हैं।

अनुच्छेद 29 (1) – इसके अनुसार विशेष संस्कृतियों, भाषाओं और परंपराओं के संरक्षण के अधिकार की गारंटी देता है, जिससे देश की सांस्कृतिक विविधता का समर्थन होता है। शिक्षक, विशेष रूप से भाषाई रूप से विविध क्षेत्रों में, भाषा और क्षेत्रीय परंपराओं के माध्यम से विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पहचान को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अनुच्छेद 45 – इसके अनुसार राज्य को प्रारंभिक बचपन की शिक्षा देने के निर्देश देता है, जिसमें सांस्कृतिक रूप से निहित शिक्षाशास्त्र की जरूरत को रेखांकित करते हुए भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और विरासत पर भी जोर दिया जाना चाहिए।

**वास्तव में स्वतंत्र भारत की ओर संविधान की हीरक जयंती पर, उपनिवेशवाद से मुक्ति का आह्वान केवल औपनिवेशिक शासन के अवशेषों को खारिज करने के बारे में नहीं है, बल्कि एक ऐसे भविष्य के निर्माण के बारे में है जो आधुनिकता और नवीनता को अपनाते हुए भारत की सभ्यतागत विरासत में निहित है। संविधान इस परिवर्तन के लिए आवश्यक रूपरेखा प्रदान करता है, और अपने वादों को पूरी तरह से साकार करने के लिए उपनिवेशीकरण के प्रयासों को शिक्षा, शासन और संस्कृति पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। स्वदेशी प्रणालियों, भाषाओं और मूल्यों को बढ़ावा देकर, भारत विकास का एक ऐसा रास्ता अपना सकता है जो औपनिवेशिक शासन की बौद्धिक और संरचनात्मक विरासत से मुक्त हो।**

ये प्रावधान भारत की बहुलवादी परंपराओं की रक्षा करने की प्रतिबद्धता को दिखाते हैं, जिससे भावी पीढ़ियाँ सांस्कृतिक विविधता को अपना सकें और बढ़ावा दे सकें।

सांस्कृतिक संरक्षक के रूप में शिक्षक-शिक्षकों की भूमिका ज्ञान के औपचारिक प्रसार से कहीं अधिक है। वे सांस्कृतिक मूल्यों और परंपराओं को बचाते हैं। भारतीय विरासत से संबंधित दृष्टिकोण, विश्वास और मूल्यों को वे अपनी दैनिक जीवन की बातचीत से प्रभावित करते हैं। शिक्षक सुविधाप्रदाता के रूप में काम कर सकते हैं।

**पाठ्चर्या एकीकरण** - शिक्षक विभिन्न विषयों में भारतीय सांस्कृतिक विरासत को शामिल कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, वे विद्यार्थियों को इतिहास पढ़ाते समय भारत की प्राचीन सभ्यताओं (जैसे वैदिक, बौद्ध और द्रविड़ परंपराओं) पर जोर दे सकते हैं, जिससे वे आधुनिक भारत के सभ्यतागत संदर्भ को समझ सकें। इसी तरह, विज्ञान और गणित के शिक्षक आयुर्वेद और शून्य की अवधारणाओं को बता सकते हैं।

संविधान का अनुच्छेद 29 भारत की भाषिक विविधता को सुरक्षित रखता है और अनुच्छेद 343-351 द्वारा प्रचारित है। शिक्षक शास्त्रीय और क्षेत्रीय भारतीय भाषाओं को बढ़ावा दे सकते हैं, जो सांस्कृतिक ज्ञान के महत्त्वपूर्ण वाहक हैं। भाषा प्राथमिक माध्यम है जिसके माध्यम से संस्कृति प्रसारित होती है, और स्थानीय भाषाओं में शिक्षण सुनिश्चित करता है कि स्वदेशी ज्ञान प्रणाली और परंपराएँ सुरक्षित रहती हैं।

शास्त्रीय संगीत, नृत्य, लोक परंपराएँ और शिल्प जैसे भारतीय कला रूप सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण और शिक्षण महत्त्वपूर्ण हैं।

**उपनिवेश मुक्त शिक्षा** - उत्तर-औपनिवेशिक भारतीय शिक्षा प्रणाली अक्सर ज्ञान के औपनिवेशिक ढाँचे को प्रतिबिंबित करती है, जो स्वदेशी ज्ञान, परंपराओं और विरासत को कम महत्त्व देती है इसलिए शिक्षकों को, विशेषकर कला शिक्षा में, पारंपरिक भारतीय कला रूपों को पाठ्यक्रम में एकीकृत करना चाहिए। इसके अलावा, शिक्षकों को इन परंपराओं के साथ रचनात्मक जुड़ाव को प्रेरित करना चाहिए।

पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों को पुनर्जीवित करने से शिक्षक छात्रों को चिकित्सा, दर्शन और विज्ञान के क्षेत्रों में भारत की समृद्ध परंपराओं से जोड़ सकते हैं। संस्कृत आधारित तर्क, आयुर्वेद और योग प्रणालियों को मुख्यधारा की शिक्षा में शामिल करना सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा के व्यापक संवैधानिक लक्ष्य के अनुरूप है। ऐसा करके शिक्षक उन औपनिवेशिक विरासतों को संतुलित करने में मदद करते हैं जो स्वदेशी ज्ञान को हाशिये

पर धकेल देते हैं।

भारतीय विरासत को बचाने की नागरिक जिम्मेदारी को बढ़ावा देने वाले मौलिक कर्तव्य (अनुच्छेद 511) में नागरिकों को जिम्मेदारी दी गई है। शिक्षक विद्यार्थियों को भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास का विश्लेषण करने और उनकी विरासत को बचाने और पुनर्जीवित करने में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए सशक्त बना सकते हैं और नागरिक जिम्मेदारी को बढ़ावा दे सकते हैं।

शिक्षक कहानी सुनाने, परियोजना-आधारित शिक्षा और सामुदायिक सहभागिता का उपयोग कर सकते हैं, ताकि विद्यार्थियों को उनके सांस्कृतिक मूल्यों की जानकारी मिल सके। छात्रों को स्थानीय सांस्कृतिक संस्थानों, विरासत स्थलों और संग्रहालयों में जाना उनकी परंपराओं से जोड़ता है।

**चुनौतियाँ और समाधान**

संसाधनों और प्रशिक्षण की कमी- कई शिक्षकों के पास सांस्कृतिक विरासत को प्रभावी ढंग से पढ़ाने के लिए पर्याप्त संसाधनों या प्रशिक्षण का अभाव हो सकता है। व्यावसायिक विकास कार्यक्रम और पाठ्यचर्या सुधार जो विरासत शिक्षा पर जोर देते हैं, आवश्यक हैं।

1947 में भारत को आजादी मिलने के बावजूद, उसकी सामाजिक व्यवस्था, शिक्षा और औपनिवेशिक शासन के कई हिस्से अस्तित्व में हैं। भारतीय संविधान, हालांकि स्वयं भारतीयों ने बनाया था, लेकिन यह ब्रिटिश संस्थागत और कानूनी व्यवस्थाओं से प्रभावित था।

दस्तावेजों में औपनिवेशिक शासन से अलग होने की कोशिश की गई है, लेकिन भारत की पूरी तरह से उपनिवेशवाद से मुक्ति की यात्रा अधूरी है।

भारतीय भाषाओं, परंपराओं और ज्ञान प्रणालियों को हाशिये पर डालने वाली

मैकालेवादी शिक्षा व्यवस्था आज भी लागू है। शिक्षा को उपनिवेश मुक्त करने का अर्थ है दर्शन, विज्ञान, गणित और नैतिकता में भारत की प्राचीन ज्ञान परंपराओं, जैसे न्याय, वैदिक गणित, आयुर्वेद और संस्कृत साहित्य को पाठ्यक्रम में शामिल करना, रचनात्मकता, आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देना और समावेशिता को बढ़ावा देना शामिल है।

उपनिवेशवाद से मुक्ति में भारत की सांस्कृतिक विविधता और भाषाई विविधता पर गौरव बहाल करने के लिए शिक्षा, सरकार और सार्वजनिक जीवन में भारतीय भाषाओं का उपयोग बढ़ावा देना शामिल है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 351 पहले से ही हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में बढ़ावा देते हुए इसे अन्य भारतीय भाषाओं के तत्त्वों से समृद्ध करता है। सांस्कृतिक रूप से मजबूत लेकिन विश्वव्यापी समाज बनाने के लिए भारतीय भाषाओं को मजबूत करना होगा।

उपनिवेशवाद से छुटकारा पाने का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा पश्चिमी दृष्टिकोण से भारत का सांस्कृतिक और सभ्यतागत इतिहास पुनः प्राप्त करना है।

औपनिवेशिक दृष्टिकोण से भारतीय इतिहास को अक्सर पश्चिमी ज्ञान की प्रतीक्षा करते हुए एक मजबूत, पिछड़े समाज के रूप में चित्रित किया जाता है। युवा पीढ़ियों में सांस्कृतिक स्वाभिमान और गौरव की भावना को बढ़ावा देने के लिए इतिहास को पुनः प्राप्त करना, स्वदेशी ज्ञान को बढ़ावा देना और भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों का जश्न मनाना चाहिए। भारतीय कला, संगीत, नृत्य और दर्शन ज्ञान के विशाल भंडार को मुख्यधारा के शैक्षिक और सांस्कृतिक भाषण में एकीकृत करना आवश्यक इसकी प्रस्तावना और प्रावधान न्याय, समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की भारतीय दृष्टि को दर्शाते हैं, जो देश की प्राचीन परंपराओं में धर्म (धार्मिकता), सर्वधर्म समभाव में निहित हैं। सभी धर्मों को समान सम्मान और स्वराज्य (स्वतंत्र शासन) जैसे कई सिद्धांत संविधान से उपनिवेशवाद के उन्मूलन का प्रयत्न करते हैं।

वास्तव में स्वतंत्र भारत की ओर संविधान की हीरक जयंती पर, उपनिवेशवाद से मुक्ति का आह्वान केवल औपनिवेशिक शासन के अवशेषों को खारिज करने के बारे में नहीं है, बल्कि एक ऐसे भविष्य के निर्माण के बारे में है जो आधुनिकता और नवीनता को अपनाते हुए भारत की सभ्यतागत विरासत में निहित है। संविधान इस परिवर्तन के लिए आवश्यक रूपरेखा प्रदान करता है, और अपने वादों को पूरी तरह से साकार करने के लिए उपनिवेशीकरण के प्रयासों को शिक्षा, शासन और संस्कृति पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। स्वदेशी प्रणालियों, भाषाओं और मूल्यों को बढ़ावा देकर, भारत विकास का एक ऐसा रास्ता अपना सकता है जो औपनिवेशिक शासन की बौद्धिक और संरचनात्मक विरासत से मुक्त हो। ❑

# संविधान सभा में भारतीय चिंतन और संस्कृति के श्लोक व सूक्तियाँ

**डॉ. शिवपूजन प्रसाद पाठक**
सह आचार्य,
डॉ. आंबेडकर इंटरनेशनल सेंटर,
नई दिल्ली

भारत अपने संविधान के पचहत्तर वर्ष की यात्रा को उत्सव के रूप में मना रहा है। यह भारत की उपलब्धि है क्योंकि भारतीय जनतंत्र को लेकर पाश्चात्य जगत में नकारात्मक भाव ही रहा है। इस गौरवमयी यात्रा की नींव का श्रेय भारत की संविधान सभा को दिया जाता है। संविधान सभा में भी भिन्न-भिन्न मत के लोग थे। इस सभा ने संस्कृति के श्लोक व सूक्तियों का प्रयोग किया है जिसमें भारतीयता का दर्शन दिखता है।

भारत को देखने व समझने की दो दृष्टि प्रतीत होती हैं। एक समूह उन लोगों का है जो भारत को पाश्चात्य दृष्टि से देखते हैं- इनमें भी दो वैचारिक धाराएँ हैं। प्रथम, भारत राष्ट्र ही नहीं है, वह कई राष्ट्रीयताओं का समुच्चय है। इसी धारा में दूसरी सोच के अनुसार भारत एक नूतन राष्ट्र है। इनके लिए अतीत का कोई महत्त्व नहीं है। इस समूह में पाश्चात्य व भारतीय लेखक व् विद्वान शामिल हैं। दूसरा समूह उन लोगो का है जो भारत को भारतीय दृष्टि से समझने व जानने का प्रयास करते हैं। इनके लिए भारत एक प्राचीनतम राष्ट्र है। इस राष्ट्र का अपना गौरवमयी इतिहास, मूल्य, परम्परा हैं, जिसके मर्म में सनातन संस्कृति है। संविधान सभा के सदस्य एच. वी. कामथ कहते हैं कि 'हम भारत के लोग अपनी आध्यात्मिकता को तथा अपनी प्राचीन परम्पराओं को नहीं भूलेंगे'। स्वामी विवेकानंद ने ही कहा था, कि जिस दिन भारत ईश्वर को भूल जायेगा, जिस दिन वह आध्यात्मिकता को त्याग देगा, उस दिन वह मर जायेगा और उस दिन वह संसार में कोई शक्ति नहीं रहेगा- 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरानिबोधत' (उठो, जागो और तब तक मत रुको जब तक कि लक्ष्य पर न पहुँचो)।

संविधान सभा इन्हीं विविध विचारों व मूल्यों को एक धागे में गूथने का प्रयास करते हुए दिखती है। इसे गूथने की प्रक्रिया में भारत की चिंतन परम्परा उन वाद और संवादों में उभरती है जिसका एक प्रतीक संस्कृति भाषा के श्लोक व सूक्तियों में हैं। इस शोध लेख में संविधान सभा में विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त की गयी संस्कृति भाषा से संबंधिति ज्ञान को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया।

**भारत की एकात्मकता : राष्ट्र, धर्म, रक्षा और राजा के कर्तव्य**

प्रथम वाचन में 11 दिसम्बर 1946 को स्थायी सभापति के निर्वाचन (डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के अवसर पर डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन भारत की एकात्मकता के बोध पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि सदियों बाद हमें एक संविधान निर्माण का दायित्व मिला है। यह ऐतिहासिक क्षण है। हम सब भावी भारत का विधान बनाने के लिए समवेत हुए हैं। वे कहते हैं कि समवाय एव साधू। संयोग ही सर्वश्रेष्ठ है। डॉ. राजेंद्र प्रसाद और डॉ. राजेन्द्र के विषय में मानव स्वभाव के सन्दर्भ में महर्षि व्यास रचित महाभारत का उल्लेख करते हैं और सभापित (राजेंद्र प्रसाद) के गुणों की प्रशंसा करते हैं -

**मृदना दारुणं हन्ति मृदना**
**हन्ति अदारुणं**
**नासाध्य मृदना किंचित**
**तस्मात्ती क्षणातर हि मृदु।**

(मृदुता या सजनता कठोरतम और कोमलतम दोनों ही पर विजय करती है। सौजन्य के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। अतः सौजन्य ही तेज से तेज अस्त्र है।) (Gentleness can overcome the hardest things; it can overcome the softest things. There is nothing

impossible to be overcome by gentleness and therefore the sharpest weapons we have is gentleness.)

इसी कड़ी में एच वी कामत कहते हैं कि, 'हमें यहाँ पर भारत की प्राण प्रतिष्ठा करनी है। वे कहते हैं कि भारत की आत्मा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद में सन्निहित है- वह आत्मा, जिसने हमारे ऋषियों और महर्षियों को परब्रह्ममयविश्व के प्राचीन परन्तु चिर नवीन सिद्धांत की शिक्षा देने की प्रेरणा दी है'।

स्टीयरिंग कमेटी के प्रस्ताव पर बहस के समय सर्वपल्ली राधाकृष्णन कहते हैं कि भारत में गणतंत्र की परम्परा प्राचीन है। वे बताते हैं कि भारत के कुछ व्यापारी दक्षिण गए तो वहाँ के एक राजा ने पूछा कि आप का राजा कौन है? तो व्यापारी उत्तर देता है कि 'हम में से कुछ पर परिषद् शासन करती है और कुछ पर राजा - 'केचिद्देशों गणाधीना केचिद राजधीना'। भारतीय सार्वभौम सत्ता का आधार अंतिम रूप से 'नैतिक सिद्धान्त' है। मनुष्य मात्र का अंत:करण है, लोग और राजा भी उसके आधीन हैं। धर्म, राजों का भी राजा है - 'धर्मम क्षात्स्र्य क्षात्रं' अलगू राय शास्त्री उद्देश्य प्रस्ताव (Objective Resolution) का समर्थन करते हुए कहते हैं कि ''यह प्रस्ताव हमें यह भी बताता है कि हम विश्व के साथ मानव कल्याण और समानता के भाव से समबन्ध स्थापति करेंगे जो ऋग्वेद के 'देवाहितम यदायु:' की अभिव्यक्ति है।'' इसी प्रकार राष्ट्र की रक्षा के लिए ऋग्वेद से 'इन्द्रस्त्वा भिराक्षतु' को उधृत करते हैं, जिसका अर्थ है, वही राष्ट्र अविचल, ध्रुव, निश्चल है जिस राष्ट्र को प्रजा चाहती है। 22 जुलाई 1947 को एस. राधाकृष्णन राष्ट्रीय ध्वज में केसरिया रंग के महत्त्व का उल्लेख करते हैं कि भगवा रंग त्याग का प्रतीक है। वे कहते हैं कि 'सर्वे त्यागा राजधर्मेशु दृष्टा' अर्थात् त्याग के समस्त रूप राजधर्म के अंतर्गत हैं। इसका संदेश है कि हमारे राजनीतिज्ञ भी त्याग की भावना से ओतप्रोत हों। हमारे इतिहास के आरम्भ काल से ही इस केसरिया रंग ने हमारे भीतर त्याग की भावना भरी है। 14 अगस्त 1947 को डॉ. राधाकृष्णन भारत के राज्य के स्वरूप पर चर्चा करते हुए कह रहे हैं कि, ऐसी सहिष्णु प्रवृत्ति का विकास ही स्वराज्य है, जिसमें मनुष्य को मनुष्य में परमात्मा दिखाई देने लगता है। -

**सर्व भूतास्थमात्मन**
**सवर्म भूतानि चात्मनि**
**संपश्यं आत्म यागवौ**
**स्वराज्यं अधिगच्छति।**

**भारत के नाम पर चर्चा**

18 सितम्बर 1949 को भारत के नाम पर बहस हो रही है। सेठ गोविन्द दास कहते हैं कि इंडिया हमारे किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में न होकर उस समय से प्रयोग होने लगा जब से यूनानी भारत आये। महाभारत के भीष्म पर्व में भारत का नाम उल्लेख है- ''अथ ते कीर्ति पश्यामि वर्ष भारत भारत'' (अथ ते कीर्तियिष्यामि वर्षम भारत भारतम (अंग्रेजी। विष्णुपुराण में भारत के नाम का उल्लेख मिलता है- गायन्ति: देवा किल गीत कानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे। ब्रह्माण्ड पुराण में हमें इस देश का नाम भारत ही मिलता है -

**भरणाच्चच प्रजानां वैमनुर्भरत उच्यते,**
**निरुक्त वचनाचैव वर्ष तदभारत स्मृतं।**

इसी भारत के नाम की प्राचीनता को आगे बढ़ाते हुए श्री कल्लूर सुब्बा राव कहते हैं कि भरत नाम का समर्थन करता हूँ। यह नाम ऋग्वेद में 3, 4, 23.4 में है। उसमें कहा गया है- 'इम इंद्र भरतस्य पुत्रा'। वायुपुराण में भारत की सीमायें दी हुई हैं -

**इदं तु मध्यमं चित्रं**
**शुभाशुभ फलोदयम,**
**उत्तरं यत्समुद्रस्य हिम**
**वत दक्षिण च यत।**

**समता, समानता, समरसता और न्याय**

20 जनवरी 1947 को अलगू राय शास्त्री उद्देश्य प्रस्ताव (Objective Resolution) का समर्थन करते हुए कहते हैं कि, ''मनुष्य में न कोई छोटा था और न कोई बड़ा था जिस तरह से माँ अपने पुत्र को मानती है, उसी तरह से राजा भी प्रजा को अपने पुत्र के समान मानते थे'', यह कल्पना भी ऋग्वेद के आठवें मंडल में मिलती है। उनका कहना था कि, ''जो समानता और आदर्श हमको पहले से सिखाई गयी है, वही इस प्रस्ताव में दोहराई गई है'' वे पुन: कहते हैं कि जो एक राज्य के आदर्श को गीता में सोचा गया है वह इस प्रस्ताव में आत्मसात किया गया है (All the ideals of a State conceived in the "Bhagvat" are embodied in the Resolution) Annadeh Samvibhagah Prajanam Yathahitah

**अन्नादेह संविभागाह प्रजानाम यथाहित:** (हिंदी लेख में यह श्लोक नहीं है)

17 नवम्बर 1949 को तृतीय वाचन हो रहा है और सेठ गोविन्द दास भारत की प्राचीनता और उसकी नवीनता विषय पर विचार रख रहे थे और प्रस्तवना में स्थापित मूल्यों के महत्त्व को भारत की प्राचीनता से जोड़ रहे थे। उसी संदर्भ में न्याय के

**प्रारूप समिति 27 दिसम्बर 1948 को शपथ पत्र पर बहस कर रही है, जिसमें किसके नाम पर शपथ ली जाए यह प्रमुख विषय है। इस विषय पर श्री एच0वी0 कामत शपथ में ईश्वर का महत्त्व और उसका भारतीय जीवन शैली का आन्तरिक भाग बताते हैं। उनका कहना था कि कोई भी कार्य करने से पहले उसे हम ईश्वर को समर्पित करते हैं - 'हरि ओम तत्सत'। उनका कहना था कि "हमारी प्राचीन संस्कृति है, आध्यात्मिक, विवेक है और हम सबको पूर्वजों से प्राप्त एक विरासत है - हम सब के लिए ही है, व मेरे लिए यह कहना आवश्यक है कि किस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमारे सब कार्य भगवान को अर्पण करने की गंभीरतम भावना से ओत-प्रोत हैं।**

अवधारणा पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि न्याय का स्थान प्रथम स्थान रहना सर्वथा उचित है। हमारे देश में न्याय को ही प्रथम स्थान प्राप्त है –

**स्वस्ति प्रजाभ्य: परिपालयंता**
**न्याय्येन मर्गेता महीं महिषा:**

शासक न्याय मार्ग से प्रजा का पालन करे – इसलिए प्रजातंत्र की घोषणा के बाद इस आदि वाक्य में न्याय को स्थान देना सर्वथा उचित बात हुई है –

**राष्ट्र भाषा और संस्कृति भाषा**

6 नवम्बर सन् 1948 प्रारूप समिति में बहस करते हुए रायबहादुर लाला राजकवंर भाषा के महत्त्व को दर्शाते हुए कहते हैं कि –

**यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा**
**वदति यद्वाचा वदति**
**तत कर्मणा करोति यत**
**कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते**

(जैसे विचार उत्पन्न होते हैं, वैसी ही वाणी भी प्रस्फुटित होती है और जैसी वाणी प्रस्फुटित होती है, वैसे ही कार्य संपन्न होते हैं और जैसे कार्य संपन्न होते हैं, तद्रूप पुरुष हो जाता है अर्थात् कार्यों से मनुष्य का स्वरूप निश्चित होता है)। वे कहते हैं कि हमारे अंतरतम विचारों की बाह्य व्यंजना ही भाषा है। एक राष्ट्र भाषा परम आवश्यक है क्योंकि इससे जो एकता और सुगठन हो सकता है, वह अन्य किसी प्रकार से नहीं हो सकता। पं० लक्ष्मीकांत मैत्र 12 सितम्बर को राष्ट्र भाषा के विषय पर व्याख्यान दे रहे हैं और संस्कृत भाषा का महत्त्व बता रहे हैं। ''श्रीमान संस्कृत की परम्परा संसार की सभी भाषाओं की परम्परा से अधिक प्राचीन और सम्मानपूर्ण है। आज भारत को सहस्त्रों वर्षों के पश्चात् अपने भाग्य का स्वरूप स्वयं निश्चित करने का अवसर मिला है। संस्कृत संसार की सबसे प्राचीन और सुसंपन्न भाषा है। वही एक विश्व भाषा है और संसार की सभी भाषाओं की जननी है। इस भाषा में सहजता और सुगम्यता है''। इसी सन्दर्भ में वे कहते हैं कि –

**साहित्य सुकुमारवस्तुनि,**
**दृढ़-नय-ग्रह ग्रंथिल**
**तर्क-वाङमय संग-विधातारि,**
**समान-लीलायिता भारती**

**पंथ निरपेक्षता**

6 दिसम्बर 1948 को श्री हच वी कामथ ने राज्य और धर्म के संबंधों पर बहस कर रहे थे। उनके अनुसार भारत धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र हो लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि राज्य ईश्वरविहीन और धर्मविरोधी हो। धर्म के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा कि –

**न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा:**
**वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम**

वस्तुत: धर्म यही होना चाहिए। किसी कवि के निरूपण के अनुसार 'येनेदं धार्यते जगत' अर्थात्, धर्म वह वस्तु है, जिसके आधार पर यह विश्व टिका हुआ है। हमें धर्म का वस्तुत: यही अर्थ लेना चाहिए। हमारे शास्त्रों में 'अहम् ब्रह्मासि' कहा गया है।

प्रारूप समिति 27 दिसम्बर 1948 को शपथ पत्र पर बहस कर रही है, जिसमें किसके नाम पर शपथ ली जाए यह प्रमुख विषय है। इस विषय पर श्री एच०वी० कामत शपथ में ईश्वर का महत्त्व और उसका भारतीय जीवन शैली का आन्तरिक भाग बताते हैं। उनका कहना था कि कोई भी कार्य करने से पहले उसे हम ईश्वर को समर्पित करते हैं – 'हरि ओम तत्सत'। उनका कहना था कि ''हमारी प्राचीन संस्कृति है, आध्यात्मिक, विवेक है और हम सबको पूर्वजों से प्राप्त एक विरासत है – हम सब के लिए ही है, व मेरे लिए यह कहना आवश्यक है कि किस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमारे सब कार्य भगवान को अर्पण करने की गंभीरतम भावना से ओत-प्रोत हैं। गीता में कहा गया है कि ''सर्वधर्मान परित्यज, मामेकं शरणं ब्रज'' सबका परित्याग कर दो, यहाँ तक कि सर्व धर्मों का भी और केवल मेरी शरण लो। हमारे सारे कार्य भगवान के प्रति ही समर्पण हैं।

**यत्करोषि यद्श्नासी**
**यज्जुहोषि ददासि यत**
**यत्तपस्यसि कौन्तेय !**
**ततकुश्र्व मदर्पणम ..**

मौलिक अधिकारों के संदर्भ में 1 मई 1947 को धर्म सम्बन्धी अधिकार पर बोलते हुए अलगू राय शास्त्री कहते हैं कि–

**''माँ भ्राता भ्रातरम द्विक्षन**
**माँ स्वसारं सुतस्वता**
**सम्यश्र: सर्वतों भूत्वा**
**वाचा वदत भद्रया''**

(यह श्लोक अंग्रेजी में नहीं है)

इस प्रकार संविधान सभा में भारतीय चिंतन परम्परा को संस्कृति भाषा और लोकोक्तियों के माध्यम से स्थापति करने का प्रयास दिखता है। ❑

# Rural Governance in Fifth Scheduled Areas : A Constitutional Guarantee of Social Justice and Equality

**Dr. Anil Kumar Biswas**

Associate Professor, Department of Political Science, The University of Burdwan, West Bengal

Tribal people constitute roughly 8 percent of the country's total population. The tribal population is concentrated in central India and the Northeastern states. As per the 2011 Census, 705 ethnic indigenous groups live in India. Out of 705 ethnic indigenous groups, 75 are declared by the government as primitive/isolated tribes. The Census Report 2011 mentioned that 10,42,81,034 tribal people live across the country. Most of them are living in rural areas, and only 10.3 percent are living in urban and semi-urban areas. The tribal communities of the country are disadvantaged and vulnerable sections of society regarding all aspects of their life such as education, health, and other socio-economic status. But the communities have their own rich culture, customs, faith, beliefs, tradition, language, and other social practices. These disadvantaged communities are called Scheduled Tribes declared by the government of India. The definition of a Scheduled tribe is not clear in the Constitution itself. The President of India is empowered to draw up a list in consultation with the governor of each state, subject to revision by parliament (Arts. 341-342). The President has made orders, specifically the Scheduled Castes and Scheduled Tribes in the different states in India, which have since been amended by acts of Parliament (Basu, 2006, p. 392).

Scheduled Areas in India

The Constitution of India makes special provisions for the administration of certain areas called 'scheduled areas' in states other than Assam, Meghalaya, Tripura, and Mizoram even though such areas are situated within the state of union territory dealt with Article 244(1), presumably because of the backwardness of the people of these areas. The power to declare any area as a scheduled area is given to the president and the president has made the scheduled areas orders, 1950, in pursuance of this power. The special provisions for the administration of such areas are given in the fifth scheduled to the Constitution. Scheduled tribe-dominated areas of the states of Andhra Pradesh, Telangana, Bihar, Gujrat, Himachal Pradesh, Madhya Pradesh, Maharashtra, Orissa, and Rajasthan fall under the fifth scheduled areas. As same the tribal areas in the states of Assam, Meghalaya, Tripura, and

 ISSN 2581-4133

Mizoram are separately dealt with in article 244 (2), and provisions for their administration are to be found in the sixth schedule to the Constitution (Basu, 2006a, p. 285).

**Administration of Fifth Scheduled Areas**

The Governor of the respective state having fifth scheduled areas is enjoying administrative authority. He is making a bridge between the President and the inhabitants of the areas and informs them about the progress of the areas to the President. The governor exercising his power under the fifth schedule is not bound by the aid and advice of the council of ministers and must exercise the function independently. The governor has been vested with enormous powers under fifth schedule areas. He has rule-making powers in the fifth scheduled area. He is also enjoying the power to fix the number of members, mode of appointment, and functioning of the Tribes Advisory Council. Article 339 of the Constitution of India deals with the administration of the fifth scheduled area and the welfare of the scheduled tribes. The article provides:

i) The President may at any time and shall, at the expiration of ten years from the commencement of this Constitution by order appoint a commission to report on the administration of the scheduled areas and the welfare of scheduled tribes in the states.

ii) The executive power of the union shall extend the giving of directions to a state as to the drawing up and execution of schemes specified in the direction to be essential for the welfare of the scheduled tribes in the state.

**Rural Administration in Fifth Scheduled Areas**

India has given importance to the rural development and poverty alleviation programme since after independence. To strengthen rural India Panchayati Raj institution was constitutionalized in 1992 under the 73rd Constitutional Amendment Act. Accordingly, the Provisions of Panchayats (Extension to the Scheduled Areas) Act, was passed in 1996 for the inclusion of tribal areas except the sixth scheduled areas for empowerment of the tribal people by preserving their customs and traditions for the aims of social justice and equality in the society.

The Provisions of Panchayats (Extension to the Scheduled Areas) Act, 1996

The Bhuria committee under the chairmanship of Dileep Singh Bhuria was constituted in the year 1994. The committee submitted a report in 1995. The committee's report proposed a legal framework suited to participatory democracy, particularly at the grassroots level (Ratho, 2007a, p. 8). Based on the recommendations of the Bhuria committee, the Provisions of Panchayats (Extension to the Scheduled Areas) Act (PESA) was passed in 1996 and came into force on 24th December 1996. The salient features of the act are:

i) Every village in the fifth scheduled area under PESA has an elected Gram Sabha for safeguarding and preservation of traditions and customs of the people;

ii) Gram Sabha of the areas shall approve the plans, programmes, and projects for social and economic development;

iii) Gram Shaba shall be responsible for the identification and selection of the beneficiaries under various poverty alleviation and other programmes;

iv) Every Gram Panchayat shall obtain a certificate of utilization of funds from Gram Sabha;

v) Reservation of seats in the scheduled areas in every panchayat shall be in proportion to the population of the communities in the Panchayats;

vi) Planning and management of minor water bodies in the scheduled areas shall be entrusted to Panchayats at the appropriate level;

vii) Recommendations of the Gram Sabha or Gram Panchayats shall be mandatory for granting licenses for mining leases for minerals and concessions for the exploitation of minor minerals by auction in the scheduled areas;

viii) The state legislature shall

**This act gives an important safeguard to the tribal people for the protection of their land from the mafia. In the issue of money lending in scheduled areas, the states of Andhra Pradesh, Gujrat, and Orissa empower the Gram Panchayats; Jharkhand provides the power to District Panchayat and the states of Chhattisgarh, Madhya Pradesh, and Maharashtra empower the Gram Sabha to decide to give license to a money lender in the scheduled area. In this way, PESA made various layers of protection for tribal people living in fifth scheduled areas across the country for the aims of social justice and equality.**

endow Panchayats and the Gram Sabha specifically with:

a) power to enforce prohibition or regulate or restrict the sale and consumption of any intoxicants;

b) ownership of minor forest products;

c) power to prevent land alienation in the scheduled areas;

d) power to manage village markets;

e) power to control money lending to Scheduled Tribes' social sectors;

f) power to control local plans and resources for such plans, including tribal sub-plans (Aslam, 2007a, pp. 44-46).

**PESAas Legal Tools of Social Justice and Equality**

The Panchayats Extension to Schedule Areas Act, 1996 (PESA) is one of the historic legislations of independent India to guarantee social justice and equality of tribal people in India. Tribal people have their own identity, traditions, customs, faith, and beliefs. All tribal communities across the country have their self-governing institution. However, encroachment of non-tribal people in the tribal areas in the name of development has created serious challenges to their overall life and resources; with rising social injustice and social inequality.The Panchayat Extension to Schedule Areas Act (PESA) is a progressive act for tribal welfare, providing for self-governance and recognizing the traditional rights of tribal communities over natural resources around them. Under the act, Gram Sabha is empowered to function as the institution of self-governance with the power of ownership of minor forest produce, power to enforce prohibition, power to prevent alienation of land, power to control local plans and resources, power to manage village markets, power to control money lending to tribal people, power to control institutions and functionaries in all social sectors. The essential spirit of the PESA is to recognize the supremacy of customary law, traditional management practices for community resources, and traditional methods of dispute resolution in scheduled areas for maintaining justice and equality. The act makes it a duty of the state to ensure that any law enacted for scheduled areas on Panchayats must give primacy to existing customary law and traditional mechanisms and also give primacy to the community in the management of its community resources (Ministry of Tribal Affairs, Govt. of India). Most of the states like Maharashtra, Madhya Pradesh, Jharkhand, and Chhattisgarh, Odisha amended their existing laws. Madhya Pradesh, Jharkhand, and Chhattisgarh enacted their respective state legislations as 'due regard to the spirit of other relevant laws for the time being in force'. The country places enormous importance on the protection and preservation of the customs, tradition, language, faith, and beliefs of Indigenous people for the fulfillment of the aims of 'SABKA SAATH SABKA VIKAS'. Under PESA it is a provision for consultation with the local tribal people before the acquisition of land in the scheduled areas for the needs of public interests and has a provision for rehabilitation and resettlement of the affected people. PESA contains the provision relating to grant licensees and leases relating to minor minerals and the provision to monitor minor forest produce in scheduled areas. As per the provision Gram Sabha or the appropriate level of Gram Panchayat has the right to give ownership of minor forest produce. The rights also strengthened after the implementation of the Forest Rights Act, of 2006. PESA along with the Forest Rights Act, 2006 has reestablished the rights of tribal people in forest produce and land. The act has provision for the management of the minor water bodies in scheduled areas to panchayats at an appropriate level and has provision to empowering Gram Sabha and Panchayats at the appropriate level "to prevent alienation of land in the scheduled areas and to take appropriate action to restore any unlawfully alienated land of a scheduled tribe". This act gives an important safeguard to the tribal people for the protection of their land from the mafia. In the issue of money lending in scheduled areas, the states of Andhra Pradesh, Gujrat, and Orissa empower the Gram Panchayats; Jharkhand provides the power to District Panchayat and the states of Chhattisgarh, Madhya Pradesh, and Maharashtra empower the Gram Sabha to decide to give license to a money lender in the scheduled area. In this way, PESA made various layers of protection for tribal people living in fifth scheduled areas across the country for the aims of social justice and equality. By these legal provisions Indian Constitution has made a shield for the protection of marginalized communities like ethnic indigenous tribal communities by providing legal guarantees for social justice and ensuring equality for everyone. ❑

# Bharatiya Sanskriti and the Constitution

**Dr. TS Girish Kumar**

Retd. Professor,
MSU Baroda, Gujrat
Member ICPR


During the making of the constitution of Bharat, there were efforts by the constitution builders to incorporate Bharatiya Sanskriti into it, and in all likelihood, they did mean well. To what extent this had been successful is available and is open to all to peruse and know, but what we do not know is that – was it really the case that all involved really wanted Bharatiya Sanskriti to reflect in our constitution or not, and whether or not they all supported and worked towards it. This is because, there is all possibility that some section of people wanted to demean Bharat and refused to at least give the due to Bharat – leave alone glorifying Bharat. Such thoughts are not unfounded: they come from the way they had been presenting Bharat both to the outside world as well as our own generations through the kind of curricula they had programmed and successfully implemented.

**Glorification of the Mughals**

Look at the curricula of our history. It shall be more than sufficient for any sensible mind to find that there had been such undue glorification of the Mughals with much rhetoric while there is hardly any mention of the Hindu kings or their kingdoms. They created the idea of something of a "Mughal architecture" which actually is non-existing. If the Mughals had the capabilities, skills or know how of making such things, they would have had similar things in the society from where they had originally arrived, but that is not the case. In most

cases they used the skills from Bharatiya knowledge and named them in their fancy, restructured existing structures and renamed them and the like. The best example in front of us are the way through which they had renamed our places with Muslim names like Ahmedabad, Allahabad etc. our children are not taught of Vijayanagara, Chola etc., whereas they are taught all about the Muslim rulers.

Just see the names of education ministers of Bharat after 1947. Take the list, and see for yourselves when a Hindu name appears. This is not innocent or accidental, from the outputs it becomes evident that there were nefarious and disguised intentions behind all these. The trust and honesty of the Hindus are taken for granted and taken for a ride indeed.

**Manusmriti**

They say that inspirations were obtained from the first ever law book of mankind – the Manusmriti. The first translation of Manusmriti into Dutch language – Manusmriti is the first Sanskrit text translated into any European language for that matter – is legitimately named as 'The Ordinances of Manu', but to what extent the inspirations drawn is reflected in the constitution remains to be understood proper. They say that we have drawn inspirations from Bharatiya knowledge tradition, but we do not find much in these lines.

**The feeling in general is simple, there may be much room for incorporation. When the Vedas teach us the principle Ekam Sat, why should there be a European artificial concept of 'secularism'? when all are equal, why should there be reservation for foreign religions like Muslims and Christians? We shall give reservations for being backward, not for thoughts came from outside, which fails to be Bharatiya.**

Bharat has more than one Dharmashastras, we have Nyaya Shastras, we also have TarkaShastras and we do not understand as to what extent they were incorporated. Why these areas are not looked into in all these years – we are yet to find out.

**World's first Democracy**

Undoubtedly, Bharat is world's first democracy. To what extent the principles of ancient Bharatiya democracy gets reflected in our constitution and democracy remains to be studied. The structure of our constitution is also to be understood to ascertain as to what extent it had become 'Bharatiya' as well.

The feeling in general is simple, there may be much room for incorporation. When the Vedas tech us the principle Ekam Sat, why should there be a European artificial concept of 'secularism'? when all are equal, why should there be reservation for foreign religions like Muslims and Christians? We shall give reservations for being backward, not for thoughts came from outside, which fails to be Bharatiya.

By virtue of the fact that the constitution is our constitution, we respect it by default. But, when there is room need for improvement, we must also open our eyes, minds and go creative.❑

 ISSN 2581-4133

# Need for Secular Uniform Civil Code in India

**Dr. Raj Kumar**
Sr. Assistant Professor,
Department of Law,
University of Jammu
Jammu, UT of J&K

Hon'ble Prime Minister Narendra Modi, recently in his speech on 15th August 2024 on the eve of Independence Day, has rejuvenated a national debate for the implementation of the Secular and Uniform Civil Code (UCC) in India, reiterating that it would save people from discriminatory practices based on personal laws and give a secular and equal legal framework for all citizens of India irrespective of religion or community. UCC is also a part of the new flagship initiative of the Government of India, "One Nation, One Law," which establishes national integration and a sense of equality among citizens with having the same and uniform laws across India.

The concept of UCC is contained in Article 44 of the Constitution of India under Part-IV which deals with the Directive Principle of State Policy (DPSP), which urges the State to work toward securing a Uniform Civil Code for all citizens irrespective of their religion, caste, or community. It also mandates to change the the current system where different religious and cultural communities follow separate personal laws based on their customs and religious practices and govern matters like marriage, divorce, inheritance, and adoption.

**Benefits of Uniform Civil Code**

The debate and discussion regarding the UCC in India is based on India's multi-cultural, multi-ethnic and diverse society, where the coexistence of multiple and different sets of laws,

especially personal laws, are seen as a part of the India's religious and cultural diversity. Therefore, it is important to understand the benefits of implementing UCC in India:

- UCC will promote and encourage equality amongst all citizens within India, irrespective of religion and culture, are governed by the same set of personal laws related to marriage, divorce, inheritance, and adoption.
- UCC will eliminate discriminatory and unfavourable practices in personal laws, particularly those affecting weaker sections of the society like women, ensuring gender equality and equal participation in the development of India.
- UCC will strengthen national unity and integration by promoting oneness amongst the citizens, moving away from religious and cultural divides in personal matters.
- A unified legal structure in personal laws will simplify the legal system, reducing delays and other problems caused by the coexistence of multiple sets of personal laws applicable to different citizens.
- UCC will align with the secular principles and constitutional mandate as enshrined in the Indian Constitution, ensuring that the State remains neutral in matters of religion.

**Conclusively, the formation of Uniform Civil Code in India is complex yet a crucial legal reform that brings together personal laws across communities to usher towards equality in law. Uttarakhand has initiated this process of reform at initial stages, and it presents an increasing momentum in favor of a UCC at the state and national levels.**

**Concerns in Implementation of Uniform Civil Code**

The critics have raised several concerns in implementation of a Uniform Civil Code (UCC) in India, it is important to highlight some concerns:

- India is a multi-religious, multi-cultural, and multi-lingual society, and UCC could be perceived as undermining the cultural and religious practices especially tribal and minority communities.
- Several religious groups and organisations having vested interests may resist implementation of UCC due to fears of losing control and

influence over personal laws and traditional practices.

- Drafting a UCC acceptable to all sections of society would be complex, and herculean task given the diverse customs and practices across religions and regions within India.
- UCC is also a contentious political issue, in a democracy like India politics is done on all issues, with concerns that its implementation it is possible that it may be used for political mileage and gains rather than genuine legal reform.
- There are also concerns about the federal structure because UCC may encroach on the rights of States, as personal laws are part of the Concurrent List in the Constitution. As per Constitutional Scheme States can also legislate on the items contained in the Concurrent list. However, the concern is not genuine because in case of conflict Union law will prevail over State law.

**Uniform Civil Code and Supreme Court**

As already discussed earlier, UCC is rooted in Article 44 of the Constitution, which mandates that the State shall endeavour to secure a UCC for all citizens. Although this Article falls under the Directive Principles of State Policy, making it non-justiciable, the judiciary has played a crucial role in advocating the implementation of the UCC in India through several landmark rulings.

In the case of Mohd. Ahmed Khan v. Shah Bano Begum (1985), the Supreme Court upheld the right to receive maintenance of a divorced muslim woman from her husband under Section 125 of the Criminal Procedure Code. Further, The Hon'ble Court held that the Criminal legal system is secular in nature in India and such provisions will apply to all Indian citizens' irrespective religion. The Court also emphasized the need for a UCC to ensure gender justice and eliminate discrepancies in personal laws against women.

Similarly, in Sarla Mudgal v. Union of India (1995), the Court asked the Government to implement the UCC, highlighting its importance in fostering national unity and equality before the law.

More recently, in Jose Paulo Coutinho v. Maria Luiza Valentina Pereira (2019) the Supreme Court reiterated the constitutional vision and madate of a UCC, advicing the Parliament to take proactive steps towards its implementation in India. The judiciary's stance reflects an ongoing effort to balance individual rights with religious freedoms, often framing the UCC as essential for achieving true constitutional equality.

**Uniform Civil Code in Uttarakhand**

Uttarakhand Government has taken a noteworthy step towards the implementation of a UCC, in the year 2022 by announcing the constitution of a committee to draft a UCC for the State of Uttarakhand. This decision aimed to establish uniform and secular laws governing marriage, divorce, inheritance, adoption, and other associated matters, irrespective of religion and culture. The initiative gained widespread national attention as it marked one of the first instances of State independently taking steps toward the adoption and implementation of a UCC.

The proposed UCC in Uttarakhand reflects growing demands for uniform and secular personal laws. It is also seen as a potential reference model for the Union Government and other States to follow, contributing to the larger national discourse on UCC.

**Conclusion**

Conclusively, the formation of Uniform Civil Code in India is complex yet a crucial legal reform that brings together personal laws across communities to usher towards equality in law. Uttarakhand has initiated this process of reform at initial stages, and it presents an increasing momentum in favor of a UCC at the state and national levels.

There are, however, several pressing concerns. Firstly, for example, reporting of marriages would be obligatory, thus equally binding on all its subjects under the veil of a UCC. However, while holding promises to bring about substantial deliverance in the name of equality and justice, for such a scheme like UCC to be successfully implemented as envisioned, it must be done in a sensitive and all-embracing manner, respecting India's pluralism while promoting constitutional values.❑

# The Preamble of the Indian Constitution : Retracing the Original Idea and the Essence of Bharat

**Rahul Mishra**

Assistant Professor
Department of Political Science Shivaji College
University of Delhi

The psyche of Bharat and its civilisational ethos guided the making of the Indian Constitution. The constitution's preamble reflects the essence of the Indian constitution and its fundamental ethos. The principles enshrined in the Indian constitution are so crucial that they form the basic structure of our constitution and the Indian polity. The preamble provides the constitution's summary and the objectives of the Indian state. With seventy-three crucial words, the Indian constitution's preamble does not merely introduce the constitution; in many cases, it provides the final remark on the interpretation of the constitution and highlights the vision of constitution-makers.

The Constitution of India came at a time when the soul of Bharat underwent its most significant challenge. Modern India emerged with a rupture that made social organisation the most challenging question for our constitution makers and leaders of the era.

However, as we commemorate seventy-five years of celebration of the Indian Constitution's spirit and ethos, engaging with a critical question becomes essential. Why was it that the constitution makers were not in favour of using terms like secularism and socialism in the constitution's preamble? It must be recalled that, if anything, the historical context of those times was the most appropriate for adopting these ideals. Yet the terms secularism and socialism were not included in the Preamble of the original constitution. The Constitution was debated and discussed for around two years, eleven months, and seventeen days. Every decision to include a specific provision and bypass others was conscious and well-thought-out.

After the culmination of our national movement that led to India's freedom from British colonialism, the country was handed over its independence from colonialism at the cost of rupturing the Indian subcontinent and its integral soul through partition. The birthplace of four religions was divided on the basis of religion. This paradox makes us question if secularism would have been crucial for our constitution makers. Yet, they refrained from using the word in the preamble. With regards to socialism, which was the provident ideology of the times. Yet, socialism was also not included in the original constitution. The constitution assembly debates provide an answer to the question.

Maulana Mohani moved an amendment to let the preamble begin with "we, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a Union of Indian Socialistic Republics". Drawing on the legacy of Soviet Russia, Mohani felt that it was important that India adopt this idea. However, others in the constituent assembly suggested that this was not in line with the draft of the Constitution. Similarly, when clause I of Article

 ISSN 2581-4133

1 of the Indian constitution was being discussed in the constituent assembly, an amendment was moved in the assembly by Prof. K.T. Shah to insert that India shall be a "Secular, Federal, Socialist" Union of states. While refuting the amendment, Honourable Dr B.R Ambedkar stated that the constitution provides a mechanism that regulates the working of several state organs. He further noted that "what should be the policy of the state, how the society should be organised in its social and economic sides are matters which the people themselves must decide according to time and circumstances. It cannot be laid down in the constitution itself because that is destroying democracy altogether. If you state in the constitution that the social organisation of the state shall take a particular form, you are, in my judgement, taking away the liberty of the people to decide what should be the social organisation in which they wish to live" (Ambedkar 1948, 401-402). He added that secular and socialist principles are well protected in our constitution. This reflects that the constitution makers were of the opinion that India must refrain from tying out its identity to borrowed ideas and instead cultivate its own unique and distinctive identity.

The above words of Dr. B.R. Ambedkar highlight certain essential principles that the new India must acknowledge and adhere to. The first fundamental principle is the belief bestowed in the coming generations to organise their society in accordance with the time and situations that characterise the overarching context. The constitution makers consciously decided not to include words like socialism and secularism as that would

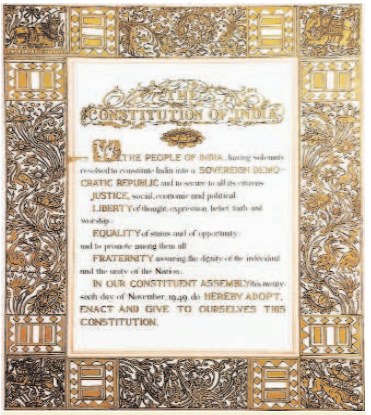
CONSTITUTION OF INDIA

WE THE PEOPLE OF INDIA, having solemnly resolved to constitute India into a SOVEREIGN DEMOCRATIC REPUBLIC and to secure to all its citizens
JUSTICE, social, economic and political;
LIBERTY of thought, expression, belief, faith and worship;
EQUALITY of status and of opportunity;
and to promote among them all
FRATERNITY assuring the dignity of the individual and the unity of the Nation;
IN OUR CONSTITUENT ASSEMBLY this twenty-sixth day of November, 1949, do HEREBY ADOPT, ENACT AND GIVE TO OURSELVES THIS CONSTITUTION.

**Above all, it's the democratic traditions that Bharat has stood for since antiquity that must reflect our national identity and spirit. It is crucial to move ahead towards realising the goal of Viksit Bharat @2047. However, wemust look back to our unique traditions and historical legacies and bring out the distinctiveness that the Bharatiya civilisation stands for as we move forward to a glorious future. The new India must be built on the strong foundations of Bharat, as our constitution makers initially highlighted.**

compromise the faith reposed in the coming generations to create the India of their dreams based on its unique social, cultural and historical legacy. The other essential notion highlighted is respecting the liberty and freedom of the coming generations. Lastly, the notion of holding the idea of democracy and the will of the people stood superior to the rest. It must be noted that every word of the preamble was debated and discussed at length from various points of view, and only then did the preamble and constitution, as we see them today, taketheir final shape.

It is unfortunate, to say the least, that the words socialist and secular were inserted in the preamble without due deliberations and in a social context that was characterised by an emergency threatening the very essence of the Indian democracy that the constitution upholds. The reposing of faith in the future generations and the liberty to constitute the India of their dream ties us to acknowledge our fundamental duty towards our country. We must remember that the history of India dates back to our ancient Bharatiya civilisation, which has its legacy and unique ideas like 'Samajik Samrasta' and 'Sarv Dharma Sambhav', which are vital to our traditions. The Bharatiya principles do not 'separate state and religion' and 'tolerate' people of different religions and backgrounds, instead, it accepts them as their own. Respect and empathy towards all sections of society are rooted in our way of life, inspired by ancient value systems.

Any attempt to pay a proper tribute to India's seventy-fifth year of its constitution includes understanding, acknowledging and acting towards our duty to uphold the essence of Bharat that our constitution makers bestowed us with. Above all, it's the democratic traditions that Bharat has stood for since antiquity that must reflect our national identity and spirit. It is crucial to move ahead towards realising the goal of Viksit Bharat @2047. However, we must look back to our unique traditions and historical legacies and bring out the distinctiveness that the Bharatiya civilisation stands for as we move forward to a glorious future. The new India must be built on the strong foundations of Bharat, as our constitution makers initially highlighted. ❑

# National Emergency : A Gloomy Phase in the History of Independent India

**Dr. Arjun Gope**
Associate Professor
Govt. Degree College, Tripura

The constitution of India promotes that the nation be fed by the principles of federal structure. The distinct legislative authorities of the central and state governments are well-defined and outlined in the Constitution's seventh schedule. The Indian Constitution provisions three different kinds of emergencies: national, state and financial emergencies. The national emergency is covered by Article 352 of Part XVIII of the Constitution, state emergency has been outlined Article 356, and financial emergency is covered by Article 360.

National Emergency (Article 352) can be circumscribed as a vital weapon that the Central Government can use to address extreme circumstances. After independence for the first time, on October 26, 1962, the then Prime Minister Jawaharlal Nehru declared a state of emergency across the country considering external aggression caused specifically due to the Indo-China war. However, after a certain period of time following the emergency's proclamation, life was swiped back to normal although the emergency remained in effect. Nehru chose not to lift the state of emergency, and it was continued till the end of Indo-Pak War in 1965.

The second national emergency was declared by Prime Minister Indira Gandhi, when the Bangladesh Liberation War eventually broke out on December 3, 1971. Prime Minister Indira Gandhi, who backed Sheikh Mujib-Ur Rahman and Bangladesh and was instrumental in their triumph over Pakistan, proclaimed a state of emergency, citing the conflict as a threat to India due to external aggression.

On June 25, 1975, while the country was still struggling hard to recover from the second national emergency, Prime Minister Indira Gandhi declared the third national emergency. Unlike the first two cases of national emergency, the third emergency was called not to settle down with external affairs but to address internal politics. Amidst huge hue and cry following the verdict of Honourable Allahabad High Court in 1971, Indira Gandhi declared national emergency for the third time on June 26 of 1975. It is said that declaration of national emergency was used as a tool to provide the then Prime Minister the means of political refuge with the help of which she could manage to protect her political interest being the Prime Minister of the country. However, the government claimed the emergency was necessary for economic development and peace.

Declaration of national emergency for the third time on June 25, 1975, marks the beginning of one of the most divisive and discussed periods in the democratic history of the country. Under Prime Minister Indira Gandhi, there was an extraordinary concentration of power

 ISSN 2581-4133

during this 21-month period ending on March 21, 1977. As a result, political opponents were imprisoned, press censorship occurred, and basic liberties were suspended. The Emergency was a turning point in Indian history that not only put the country's democratic institutions to a test but also permanently damaged the collective memory of its people. Numerous prominent national leaders were also taken into police custody. The democratic rights of the average person did not exist. Police brutalized anyone who disagreed with the emergency. The situation led to a tumultuous political environment. The political climate is further destabilized by economic issues like unemployment and inflation, which had intensified civic unrest and stroked public anger.

**Major impacts of the National emergency are:**

**Suspension of Democratic Rights:** A number of fundamental rights were suspended, elections were postponed, and parliament was essentially marginalized. Preventive detention laws were enacted that resulted in the imprisonment of people without the right to a trial.

**Cease of Power :** The Prime Minister's Office had a disproportionate amount of power. Meaningful discussion and decision-making were impeded by the marginalization of the cabinet and typically a group made decisions collectively.

**Disrespect the Judiciary system :** There was a serious threat to the judiciary's independence. For instance, according to the Shah Commission report, the preventative detention laws resulted in the arrest and incarceration of around eleven thousand individuals between 1975 and 1977.

**Economic Controls :** With increased industry nationalization, there was a notable movement towards economic centralization. These restrictions delayed economic progress and produced inefficiency.

**In Indian context, the national emergency is a contentious issue with implausible and complicated ramifications. But it's clear that declaring a national emergency seriously compromises the ordinary people's fundamental rights, which severely harm democracy and democratic practices. Consolidation of power lessens the strength of democracy.**

**Dominance of Labor Rights :** Industrial activities and strikes were outlawed. Arrests of labor leaders and activists limited working-class rights and shattered labor movements.

**Civil liberties were violated :** Basic rights, especially the freedom to free speech and expression, were curtailed. There was strict press censorship in place, and any kind of opposition would have dire consequences.

**Unethical Forced Sterilization :** Forced sterilizations were carried out in the name of population control. The World Bank gave the Indian government a loan of US $66 million dollars between 1972 and 1980 for sterilization. This resulted in extensive violations of human rights, especially targeting the impoverished citizens.

**Limitations of the provisions of National Emergency in India can be analyzed on the following grounds:**

**Misuse of Conditional Power :** 'It is claimed that the National Emergency measures give the government undue authority, which breeds authoritarianism and erodes democratic standards.

**Violation of Human Rights :** In the event of a national emergency, citizens' fundamental rights are suspended or restricted, which result in the violation of civil freedoms guaranteed by the Constitution.

**Threat to Federalism :** Proclamations of national emergency frequently lead to the concentration of authority, violating the sovereignty and independence of individual states. Tensions between the federal and state governments may result from this, undermining the nation's federal system.

**Impact in long run :** The consequences of emergency measures may not go away even after they are lifted. The consequences may include a decline in public confidence in the government, harm to democratic norms, and an erosion of institutional trust. This may have long-term effects on political stability and governance.

In Indian context, the national emergency is a contentious issue with implausible and complicated ramifications. But it's clear that declaring a national emergency seriously compromises the ordinary people's fundamental rights, which severely harm democracy and democratic practices. Consolidation of power lessens the strength of democracy. The government's disregard for democratic principles and marginalization of the opposition seeds the discontent among the citizen of the nation. According to Mukherjee et al. (2023), concerning the general public, things deteriorated during emergencies because there were no channels for protest or other means of expressing and resolving their complaints. Therefore, it is the responsibility of the government to take the initiative to put an end to this form of national emergency in the best interests of both the nation as a whole and its citizen. Bharat can only prosper if it remains united and develops resilience against the exploitation of emergency powers. ❑